

गजल

इस नदी की धार में ठंडी हवा आती तो है,
नाव जर्जर ही सही, लहरों से टकराती तो है।

एक चिनगारी कही से ढूँढ लाओ दोस्तों,
इस दिए में तेल से भीगी हुई बाती तो है।

एक खंडहर के हृदय-सी, एक जंगली फूल-सी,
आदमी की पीर गूंगी ही सही, गाती तो है।

एक चादर साँझ ने सारे नगर पर डाल दी,
यह अंधेरे की सड़क उस भोर तक जाती तो है।

निर्वचन मैदान में लेटी हुई है जो नदी,
पत्थरों से, ओट में जा-जाके बतियाती तो है।

दुख नहीं कोई कि अब उपलब्धियों के नाम पर,
और कुछ हो या न हो, आकाश-सी छाती तो है।

- दुष्यन्त कुमार



बरसों के बाद कहीं

बरसों के बाद कभी
हमतुम यदि मिलें कहीं,
देखें कुछ परिचित से,
लेकिन पहिचानें ना।

याद भी न आये नाम,
रूप, रंग, काम, धाम,
सोचें,
यह सम्भव है -
पर, मन में मानें ना।

हो न याद, एक बार
आया तूफान, ज्वार
बंद, मिटे पृष्ठों को -
पढ़ने की ठाने ना।

बातें जो साथ हुई,
बातों के साथ गयीं,
आँखें जो मिली रहीं -
उनको भी जानें ना।

- गिरिजाकुमार माथुर



कारवाँ गुज़र गया

स्वप्न झरे फूल से,
मीत चुभे शूल से,
लुट गये सिंगार सभी बाग़ के बबूल से,
और हम खड़ेखड़े बहार देखते रहे।
कारवाँ गुज़र गया, गुबार देखते रहे!

नींद भी खुली न थी कि हाय धूप ढल गई,
पाँव जब तलक उठे कि ज़िन्दगी फिसल गई,
पातपात झर गये कि शाख़शाख़ जल गई,
चाह तो निकल सकी न, पर उमर निकल गई,
गीत अशक़ बन गए,
छंद हो दफन गए,
साथ के सभी दिये धुआँधुआँ पहन गये,
और हम झुकेझुके,
मोड़ पर रुकेरुके
उम्र के चढ़ाव का उतार देखते रहे।
कारवाँ गुज़र गया, गुबार देखते रहे।

क्या शबाब था कि फूलफूल प्यार कर उठा,
क्या सुरूप था कि देख आइना मचल उठा
थाम कर जिगर उठा कि जो मिला नज़र उठा,
एक दिन मगर यहाँ,
ऐसी कुछ हवा चली,
लुट गयी कलीकली कि घुट गयी गलीगली,
और हम लुटेलुटे,
वक्त से पिटेपिटे,
साँस की शराब का खुमार देखते रहे।
कारवाँ गुज़र गया, गुबार देखते रहे।

हाथ थे मिले कि जुल्फ़ चाँद की सँवार दूँ,

होठ थे खुले कि हर बहार को पुकार दूँ,
दर्द था दिया गया कि हर दुखी को प्यार दूँ,
और साँस यूँ कि स्वर्ग भूमी पर उतार दूँ,
हो सका न कुछ मगर,
शाम बन गई सहर,
वह उठी लहर कि दह गये किले बिखरबिखर,
और हम डरेडरे,
नीर नयन में भरे,
ओढ़कर कफ़न, पड़े मज़ार देखते रहे।
कारवाँ गुज़र गया, गुबार देखते रहे!

माँग भर चली कि एक, जब नई नई किरन,
ढोलकें धुमुक उठीं, ठुमक उठे चरनचरन,
शोर मच गया कि लो चली दुल्हन, चली दुल्हन,
गाँव सब उमड़ पड़ा, बहक उठे नयननयन,
पर तभी ज़हर भरी,
गाज एक वह गिरी,
पुँछ गया सिंदूर तारतार हुई चूनरी,
और हम अजानसे,
दूर के मकान से,
पालकी लिये हुए कहार देखते रहे।
कारवाँ गुज़र गया, गुबार देखते रहे।

- गोपालदास नीरज



छन्द प्रसंग नहीं हैं

हम जीवन के महाकाव्य हैं
केवल छन्द प्रसंग नहीं हैं।
कंकड़-पत्थर की धरती है
अपने तो पाँवों के नीचे
हम कब कहते बन्धु! बिछाओ
स्वागत में मखमली गलीचे
रेती पर जो चित्र बनाती
ऐसी रंग-तरंग नहीं है।
तुमको रास नहीं आ पायी
क्यों अजातशत्रुता हमारी
छिप-छिपकर जो करते रहते
शीतयुद्ध की तुम तैयारी
हम भाड़े के सैनिक लेकर
लड़ते कोई जंग नहीं हैं।
कहते-कहते हमें मसीहा
तुम लटका देते सलीब पर
हंसें तुम्हारी कूटनीति पर
कुढ़ें या कि अपने नसीब पर
भीतर-भीतर से जो पोले
हम वे ढोल-मृदंग नहीं है।
तुम सामुहिक बहिष्कार की
मित्र! भले योजना बनाओ
जहाँ-जहाँ पर लिखा हुआ है
नाम हमारा, उसे मिटाओ
जिसकी डोर हाथ तुम्हारे
हम वह कटी पतंग नहीं है।

- देवेन्द्र शर्मा इन्द्र



कहो कैसे हो

लौट रहा हूँ मैं अतीत से
देखूँ प्रथम तुम्हारे तेवर
मेरे समय! कहो कैसे हो?

शोर-शराबा चीख-पुकारें सड़कें भीड़ दुकानें होटल
सब सामान बहुत है लेकिन गायक दर्द नहीं है केवल
लौट रहा हूँ मैं अगेय से
सोचा तुम से मिलता जाऊँ
मेरे गीत! कहो कैसे हो?

भवन और भवनों के जंगल चढ़ते और उतरते ज़ीने
यहाँ आदमी कहाँ मिलेगा सिर्फ़ मशीनें और मशीनें
लौट रहा हूँ मैं यथार्थ से
मन हो आया तुम्हें भेंट लूँ
मेरे स्वप्न! कहो कैसे हो?

नस्ल मनुज की चली मिटाती यह लावे की एक नदी है
युद्धों का आतंक न पूछो खबरदार बीसवीं सदी है
लौट रहा हूँ मैं विदेश से
सब से पहले कुशल पूँछ लूँ
मेरे देश! कहो कैसे हो?

यह सभ्यता नुमाइश जैसे लोग नहीं हैं सिर्फ़ मुखौटे
ठीक मनुष्य नहीं है कोई कद से ऊँचे मन से छोटे
लौट रहा हूँ मैं जंगल से
सोचा तुम्हे देखता जाऊँ
मेरे मनुज! कहो कैसे हो?

जीवन की इन रफ़्तारों को अब भी बाँधे कच्चा धागा
सुबह गया घर शाम न लौटे उस से बढ कर कौन अभागा
लौट रहा हूँ मैं बिछोह से
पहले तुम्हें बाँह में भर लूँ
मेरे प्यार! कहो कैसे हो?

- चन्द्रसेन विराट



अच्छा अनुभव

मेरे बहुत पास
मृत्यु का सुवास
देह पर उस का स्पर्श
मधुर ही कहूँगा
उस का स्वर कानों में
भीतर मगर प्राणों में
जीवन की लय
तरंगित और उद्दाम
किनारों में काम के बँधा
प्रवाह नाम का

एक दृश्य सुबह का
एक दृश्य शाम का
दोनों में क्षितिज पर
सूरज की लाली

दोनों में धरती पर
छाया घनी और लम्बी
इमारतों की वृक्षों की
देहों की काली

दोनों में कतारें पंछियों की
चुप और चहकती हुई
दोनों में राशीयाँ फूलों की
कम-ज्यादा महकती हुई

दोनों में
एक तरह की शान्ति
एक तरह का आवेग
आँखें बन्द प्राण खुले हुए

अस्पष्ट मगर धुले हुए
कितने आमन्त्रण
बाहर के भीतर के
कितने अदम्य इरादे
कितने उलझे कितने सादे

अच्छा अनुभव है
मृत्यु मानो
हाहाकार नहीं है
कलरव है!

- भवानीप्रसाद मिश्र



पाबंदियाँ

होंठ पर पाबन्दियाँ हैं
गुनगुनाने की।

निर्जनों में जब पपीहा
पी बुलाता है।
तब तुम्हारा स्वर अचानक
उभर आता है।

अधर पर पाबन्दियाँ हैं
गीत गाने की।

चाँदनी का पर्वतों पर
खेलना रुकना
शीश सागर में झुका कर
रूप को लखना।

दर्पणों को मनाही
छबियाँ सजाने की।

ओस में भीगी नहाई
दूब सी पलकें,
श्रृंग से श्यामल मचलती
धार सी अलकें।

शिल्प पर पाबन्दियाँ
आकार पाने की।

केतकी सँग पवन के
ठहरे हुए वे क्षण,
देखते आकाश को
भुजपाश में, लोचना।

बिजलियों को है मनाही
मुस्कुराने की।

हवन करता मंत्र सा
पढता बदन चन्दन,
यज्ञ की उठती शिखा सा
दग्ध पावन मन।

प्राण पर पाबन्दियाँ
समिधा चढाने की।

- बालकृष्ण मिश्रा



ऊँचाई

ऊँचे पहाड़ पर,
पेड़ नहीं लगते,
पौधे नहीं उगते,
न घास ही जमती है।
जमती है सिर्फ बर्फ,
जो, कफन की तरह सफेद और,
मौत की तरह ठंडी होती है।
खेलती, खिल-खिलाती नदी,
जिसका रूप धारण कर,
अपने भाग्य पर बूंद-बूंद रोती है।

ऐसी ऊँचाई,
जिसका परस
पानी को पत्थर कर दे,
ऐसी ऊँचाई
जिसका दरस हीन भाव भर दे,
अभिनन्दन की अधिकारी है,
आरोहियों के लिये आमंत्रण है,
उस पर झंडे गाड़े जा सकते हैं,
किन्तु कोई गौरैया,
वहाँ नीड़ नहीं बना सकती,
ना कोई थका-मांदा बटोही,
उसकी छांव में पलभर पलक ही झपका सकता है।

सच्चाई यह है कि
केवल ऊँचाई ही काफ़ि नहीं होती,
सबसे अलग-थलग,
परिवेश से पृथक,
अपनों से कटा-बंटा,
शून्य में अकेला खड़ा होना,
पहाड़ की महानता नहीं,
मजबूरी है।

ऊँचाई और गहराई में
आकाश-पाताल की दूरी है।
जो जितना ऊँचा,
उतना एकाकी होता है,
हर भार को स्वयं ढोता है,
चेहरे पर मुस्कानें चिपका,
मन ही मन रोता है।

जरूरी यह है कि
ऊँचाई के साथ विस्तार भी हो,
जिससे मनुष्य,
टूट सा खड़ा न रहे,
औरों से घुले-मिले,
किसी को साथ ले,
किसी के संग चले।
भीड़ में खो जाना,
यादों में डूब जाना,
स्वयं को भूल जाना,
अस्तित्व को अर्थ,
जीवन को सुगंध देता है।
धरती को बौनों की नहीं,
ऊँचे कद के इन्सानों की जरूरत है।
इतने ऊँचे कि आसमान छू लें,
नये नक्षत्रों में प्रतिभा की बीज बो लें,
किन्तु इतने ऊँचे भी नहीं,
कि पाँव तले दूब ही न जमे,
कोई कांटा न चुभे,
कोई कलि न खिले।

न वसंत हो, न पतझड़,
हों सिर्फ ऊँचाई का अंधड़,
मात्र अकेलापन का सन्नाटा।

मेरे प्रभु!
मुझे इतनी ऊँचाई कभी मत देना,
गैरों को गले न लगा सकूँ,
इतनी रुखाई कभी मत देना।

- अटल बिहारी वाजपेयी



सृष्टि का सार

रंगों की मृगतृष्णा कहीं
डरती है कैनवस की उस सादगी से
जिसे आकृति के माध्यम की आवश्यकता नहीं
जो कुछ रचे जाने के लिये
नष्ट होने को है तैयार॥

स्वीकार्य है उसे मेरी,
काँपती उंगलियों की अस्थिरता
मेरे अपरिपक्व अर्थों की मान्यतायें
मेरे अस्पष्ट भावों का विकार॥

तभी तो तब से अब तक
यद्यपि बहुत बार
एकत्रित किया रेखाओं को,
रचने भी चाहे सीमाओं से
मन के विस्तार ॥

फिर भी कल्पना को आकृति ना मिली
ना कोई पर्याय, ना कोई नाम
बिछी है अब तक मेरे और कैनवस के बीच
एक अनवरत प्रतीक्षा
जो ढंढ रही है अपनी बोयी रिक्तताओं में
अपनी ही सृष्टि का सार ॥

- अंशु जौहरी



क्योंकि

..... क्योंकि सपना है अभी भी -
इसलिए तलवार टूटे, अश्व घायल
कोहरे डूबी दिशायेँ,
कौन दुश्मन, कौन अपने लोग, सब कुछ धुंध-धूमिल,
किन्तु कायम युद्ध का संकल्प है अपना अभी भी
..... क्योंकि है सपना अभी भी!

तोड़ कर अपने चतुर्दिक का छलावा
जबकि घर छोड़ा, गली छोड़ी, नगर छोड़ा,
कुछ नहीं था पास बस इसके अलावा,
विदा बेला, यही सपना भाल पर तुमने तिलक की तरह आँका था
(एक युग के बाद अब तुमको कहां याद होगा)
किन्तु मुझको तो इसी के लिए जीना और लड़ना
है धधकती आग में तपना अभी भी
..... क्योंकि सपना है अभी भी!

तुम नहीं हो, मैं अकेला हूँ मगर
यह तुम्ही हो जो
टूटती तलवार की झंकार में
या भीड़ की जयकार में
या मौत के सुनसान हाहाकार में
फिर गूँज जाती हो
और मुझको
ढाल छूटे, कवच टूटे हुए मुझको
फिर याद आता है कि
सब कुछ खो गया है - दिशाएँ, पहचान, कुंडल-कवच
लेकिन शेष हूँ मैं, युद्धरत् मैं, तुम्हारा मैं
तुम्हारा अपना अभी भी

इसलिए, तलवार टूटी, अश्व घायल,
कोहरे डूबी दिशाएँ,
कौन दुश्मन, कौन अपने लोग, सब कुछ धुंध-धूमिल

किन्तु कायम युद्ध का संकल्प है अपना अभी भी
..... क्योंकि सपना है अभी भी!

- धर्मवीर भारती



शाम: दो मनःस्थितियाँ

एक:

शाम है, मैं उदास हूँ शायद
अजनबी लोग अभी कुछ आयें
देखिए अनछुए हुए सम्पुट
कौन मोती सहेजकर लायें
कौन जाने कि लौटती बेला
कौन-से तार कहाँ छू जायें!

बात कुछ और छेड़िए तब तक
हो दवा ताकि बेकली की भी,
द्वार कुछ बन्द, कुछ खुला रखिए
ताकि आहट मिले गली की भी -

देखिए आज कौन आता है -
कौन-सी बात नयी कह जाये,
या कि बाहर से लौट जाता है
देहरी पर निशान रह जाये,
देखिए ये लहर डुबोये, या
सिर्फ तटरेख छू के बह जाये,

कूल पर कुछ प्रवाल छूट जायें
या लहर सिर्फ फेनावली हो
अधखिले फूल-सी विनत अंजुली
कौन जाने कि सिर्फ खाली हो?

दो:

वक्रत अब बीत गया बादल भी
क्या उदास रंग ले आये,
देखिए कुछ हुई है आहट-सी

कौन है? तुम? चलो भले आये!
अजनबी लौट चुके द्वारे से
दर्द फिर लौटकर चले आये

क्या अजब है पुकारिए जितना
अजनबी कौन भला आता है
एक है दर्द वही अपना है
लौट हर बार चला आता है

अनखिले गीत सब उसी के हैं
अनकही बात भी उसी की है
अनउगे दिन सब उसी के हैं
अनहुई रात भी उसी की है
जीत पहले-पहल मिली थी जो
आखिरी मात भी उसी की है

एक-सा स्वाद छोड़ जाती है
ज़िन्दगी तृप्त भी व प्यासी भी
लोग आये गये बराबर हैं
शाम गहरा गयी, उदासी भी!

- धर्मवीर भारती



कौन रंग फागुन रंगे

कौन रंग फागुन रंगे, रंगता कौन वसंत,
प्रेम रंग फागुन रंगे, प्रीत कुसुंभ वसंत।

रोमरोम केसर घुली, चंदन महके अंग,
कब जाने कब धो गया, फागुन सारे रंग।

रचा महोत्सव पीत का, फागुन खेले फाग,
साँसों में कस्तूरियाँ, बोये मीठी आग।

पलट पलट मौसम तके, भौचक निरखे धूप,
रह रहकर चितवे हवा, ये फागुन के रूपा।

मन टेसू टेसू हुआ तन ये हुआ गुलाल
अंखियों, अंखियों बो गया, फागुन कई सवाल।

होठोंहोठों चुप्पियाँ, आँखों, आँखों बात,
गुलमोहर के ख्वाब में, सड़क हँसी कल रात।

अनायास टूटे सभी, संयम के प्रतिबन्ध,
फागुन लिखे कपोल पर, रस से भीदे छंद।

अंखियों से जादू करे, नजरोँ मारे मूँठ,
गुदना गोदे प्रीत के, बोले सौ सौ झूठ।

पारा, पारस, पद्मिनी, पानी, पीर, पलाश,
प्रय, प्रकर, पीताभ के, अपने हैं इतिहास।

भूली, बिसरी याद के, कच्चेपक्के रंग,
देर तलक गाते रहे, कुछ फागुन के संग।



लो वही हुआ

लो वही हुआ जिसका था डर,
ना रही नदी, ना रही लहर।

सूरज की किरन दहाड़ गई,
गरमी हर देह उघाड़ गई,
उठ गया बवंडर, धूल हवा में -
अपना झंडा गाड़ गई,
गौरइया हाँफ रही डर कर,
ना रही नदी, ना रही लहर।

हर ओर उमस के चर्चे हैं,
बिजली पंखों के खर्चे हैं,
बूढ़े महुए के हाथों से,
उड़ रहे हवा में पर्चे हैं,
"चलना साथी लू से बच कर".
ना रही नदी, ना रही लहर।

संकल्प हिमालय सा गलता,
सारा दिन भट्टी सा जलता,
मन भरे हुए, सब डरे हुए,
किस की हिम्मत, बाहर हिलता,
है खड़ा सूर्य सर के ऊपर,
ना रही नदी ना रही लहर।

बोझिल रातों के मध्य पहर,
छपरी से चन्द्रकिरण छनकर,
लिख रही नया नारा कोई,
इन तपी हुई दीवारों पर,
क्या बाँचूँ सब थोथे आखर,
ना रही नदी ना रही लहर।

- दिनेश सिंह



सम्पूर्ण यात्रा

प्यास तो तुम्हीं बुझाओगी नदी
मैं तो सागर हूँ
प्यासा
अथाह।

तुम बहती रहो
मुझ तक आने को।
मैं तुम्हें लूँगा नदी
सम्पूर्ण।

कहना तुम पहाड़ से
अपने जिस्म पर झड़ा
सम्पूर्ण तपस्वी पराग
घोलता रहे तुममें।

तुम सूत्र नहीं हो नदी न ही सेतु
सम्पूर्ण यात्रा हो मुझ तक
जागे हुए देवताओं की चेतना हो तुम।

तुम सृजन हो
चट्टानी देह का।
प्यास तो तुम्ही बुझाओगी नदी।

मैं तो सागर हूँ
प्यासा
अथाह

- दिविक रमेश



एक आशीर्वाद

जा तेरे स्वप्न बड़े हों।
भावना की गोद से उतर कर
जल्द पृथ्वी पर चलना सीखें।
चाँद तारों सी अप्राप्य ऊँचाइयों के लिये
रूठना मचलना सीखें।
हँसें
मुस्कुराएँ
गाएँ।
हर दीये की रोशनी देखकर ललचायें
उँगली जलायें।
अपने पाँव पर खड़े हों।
जा तेरे स्वप्न बड़े हों।

- दुष्यन्त कुमार



गजल

हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।

आज यह दीवार, परदों की तरह हिलने लगी,
शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए।

हर सड़क पर, हर गली में, हर नगर, हर गाँव में,
हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए।

सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
सारी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।

मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।

- दुष्यन्त कुमार



इतने ऊँचे उठो

इतने ऊँचे उठो कि जितना उठा गगन है।
देखो इस सारी दुनिया को एक दृष्टि से
सिंचित करो धरा, समता की भाव वृष्टि से
जाति भेद की, धर्म-वेश की
काले गोरे रंग-द्वेष की
ज्वालाओं से जलते जग में
इतने शीतल बहो कि जितना मलय पवन है॥

नये हाथ से, वर्तमान का रूप सँवारो
नयी तूलिका से चित्रों के रंग उभारो
नये राग को नूतन स्वर दो
भाषा को नूतन अक्षर दो
युग की नयी मूर्ति-रचना में
इतने मौलिक बनो कि जितना स्वयं सृजन है॥

लो अतीत से उतना ही जितना पोषक है
जीर्ण-शीर्ण का मोह मृत्यु का ही द्योतक है
तोड़ो बन्धन, रुके न चिन्तन
गति, जीवन का सत्य चिरन्तन
धारा के शाश्वत प्रवाह में
इतने गतिमय बनो कि जितना परिवर्तन है।

चाह रहे हम इस धरती को स्वर्ग बनाना
अगर कहीं हो स्वर्ग, उसे धरती पर लाना
सूरज, चाँद, चाँदनी, तारे
सब हैं प्रतिपल साथ हमारे
दो कुरूप को रूप सलोना
इतने सुन्दर बनो कि जितना आकर्षण है॥

- द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी



आराम करो

एक मित्र मिले, बोले, "लाला, तुम किस चक्की का खाते हो?
इस डेढ़ छँटाक के राशन में भी तोंद बढ़ाए जाते हो।
क्या रक्खा है माँस बढ़ाने में, मनहूस, अक्ल से काम करो।
संक्रान्ति-काल की बेला है, मर मिटो, जगत में नाम करो।"
हम बोले, "रहने दो लेक्चर, पुरुषों को मत बदनाम करो।
इस दौड़-धूप में क्या रक्खा, आराम करो, आराम करो।

आराम ज़िन्दगी की कुंजी, इससे न तपेदिक होती है।
आराम सुधा की एक बूंद, तन का दुबलापन खोती है।
आराम शब्द में 'राम' छिपा जो भव-बंधन को खोता है।
आराम शब्द का ज्ञाता तो विरला ही योगी होता है।
इसलिए तुम्हें समझाता हूँ, मेरे अनुभव से काम करो।
ये जीवन, यौवन क्षणभंगुर, आराम करो, आराम करो।

यदि करना ही कुछ पड़ जाए तो अधिक न तुम उत्पात करो।
अपने घर में बैठे-बैठे बस लंबी-लंबी बात करो।
करने-धरने में क्या रक्खा जो रक्खा बात बनाने में।
जो ओठ हिलाने में रस है, वह कभी न हाथ हिलाने में।
तुम मुझसे पूछो बतलाऊँ -- है मज़ा मूर्ख कहलाने में।
जीवन-जागृति में क्या रक्खा जो रक्खा है सो जाने में।

मैं यही सोचकर पास अक्ल के, कम ही जाया करता हूँ।
जो बुद्धिमान जन होते हैं, उनसे कतराया करता हूँ।
दीए जलने के पहले ही घर में आ जाया करता हूँ।
जो मिलता है, खा लेता हूँ, चुपके सो जाया करता हूँ।
मेरी गीता में लिखा हुआ -- सच्चे योगी जो होते हैं,
वे कम-से-कम बारह घंटे तो बेफ़िक्री से सोते हैं।

अदवायन खिंची खाट में जो पड़ते ही आनंद आता है।
वह सात स्वर्ग, अपवर्ग, मोक्ष से भी ऊँचा उठ जाता है।
जब 'सुख की नींद' कढ़ा तकिया, इस सर के नीचे आता है,

तो सच कहता हूँ इस सर में, इंजन जैसा लग जाता है।
मैं मेल ट्रेन हो जाता हूँ, बुद्धि भी फक-फक करती है।
भावों का रश हो जाता है, कविता सब उमड़ी पड़ती है।

मैं औरों की तो नहीं, बात पहले अपनी ही लेता हूँ।
मैं पड़ा खाट पर बूटों को ऊँटों की उपमा देता हूँ।
मैं खटरागी हूँ मुझको तो खटिया में गीत फूटते हैं।
छत की कड़ियाँ गिनते-गिनते छंदों के बंध टूटते हैं।
मैं इसीलिए तो कहता हूँ मेरे अनुभव से काम करो।
यह खाट बिछा लो आँगन में, लेटो, बैठो, आराम करो।

- गोपालप्रसाद व्यास



स्वतंत्रता का दीपक

घोर अंधकार हो, चल रही बयार हो,
आज द्वार द्वार पर यह दिया बुझे नहीं।
यह निशीथ का दिया ला रहा विहान है।

शक्ति का दिया हुआ, शक्ति को दिया हुआ,
भक्ति से दिया हुआ, यह स्वतंत्रतादिया,
रुक रही न नाव हो, ज़ोर का बहाव हो,
आज गंगधार पर यह दिया बुझे नहीं!
यह स्वदेश का दिया प्राण के समान है!

यह अतीत कल्पना, यह विनीत प्रार्थना,
यह पुनीत भावना, यह अनंत साधना,
शांति हो, अशांति हो, युद्ध, संधि क्रांति हो,
तीर पर, कछार पर, यह दिया बुझे नहीं!
देश पर, समाज पर, ज्योति का वितान है!

तीनचार फूल है, आसपास धूल है
बाँस है, बबूल है, घास के दुकूल है,
वायु भी हिलोर से, फूँक दे, झकोर दे,
कब्र पर, मजार पर, यह दिया बुझे नहीं!
यह किसी शहीद का पुण्य प्राणदान है!

झूमझूम बदलियाँ, चूमचूम बिजलियाँ
आँधियाँ उठा रहीं, हलचलें मचा रहीं!
लड़ रहा स्वदेश हो, शांति का न लेश हो
क्षुद्र जीतहार पर, यह दिया बुझे नहीं!
यह स्वतंत्र भावना का स्वतंत्र गान है!

- गोपालसिंह नेपाली



ईधन

छोटे थे, माँ उपले थापा करती थी
हम उपलों पर शकलें गूँधा करते थे
आँख लगाकर - कान बनाकर

नाक सजाकर -

पगड़ी वाला, टोपी वाला

मेरा उपला -

तेरा उपला -

अपने-अपने जाने-पहचाने नामों से
उपले थापा करते थे

हँसता-खेलता सूरज रोज़ सवेरे आकर
गोबर के उपलों पे खेला करता था
रात को आँगन में जब चूल्हा जलता था
हम सारे चूल्हा घेर के बैठे रहते थे
किस उपले की बारी आयी
किसका उपला राख हुआ
वो पंडित था -

इक मुन्ना था -

इक दशरथ था -

बरसों बाद - मैं

श्मशान में बैठा सोच रहा हूँ
आज की रात इस वक्त के जलते चूल्हे में
इक दोस्त का उपला और गया!

- गुलज़ार



बीती विभावरी जाग री!

बीती विभावरी जाग री!

अम्बर पनघट में डुबो रही
तारा घट ऊषा नागरी।

खग कुल-कुल सा बोल रहा,

किसलय का अंचल डोल रहा,

लो यह लतिका भी भर लाई
मधु मुकुल नवल रस गागरी।

अधरों में राग अमंद पिये,

अलकों में मलयज बंद किये

तू अब तक सोई है आली
आँखों में भरे विहाग री।

- जयशंकर प्रसाद



कामायनी
(‘लज्जा’ परिच्छेद)

कोमल किसलय के अंचल में नन्हीं कलिका ज्यों छिपती-सी,
गोधुली के धूमिल पट में दीपक के स्वर में दिपती-सी।
मंजुल स्वप्नों की विस्मृति में मन का उन्माद निखरता ज्यों -
सुरभित लहरों की छाया में बुल्ले का विभव बिखरता ज्यों -
वैसी ही माया से लिपटी अधरों पर उँगली धरे हुए,
माधव के सरस कुतूहल का आँखों में पानी भरे हुए।
नीरव निशीथ में लतिका-सी तुम कौन आ रही हो बढ़ती?
कोमल-बाहें फैलाये-सी आलिंगन का जादू पढ़ती!
किन इंद्रजाल के फूलों से लेकर सुहाग-कण राग-भरे,
सिर नीचा कर हो गूँथ रही माला जिससे मधु धार ढरे?
पुलकित कदंब की माला-सी पहना देती हो अन्तर में,
झुक जाती है मन की डाली अपनी फलभरता के डर में।
वरदान सदृश हो डाल रही नीली किरनों से बुना हुआ,
यह अंचल कितना हल्का-सा कितना सौरभ से सना हुआ।
सब अंग मोम से बनते हैं कोमलता में बल खाती हूँ,
मैं सिमट रही-सी अपने में परिहास-गीत सुन पाती हूँ।
स्मित बन जाती है तरल हँसी नयनों में भर कर बाँकपना,
प्रत्यक्ष देखती हूँ सब जो वह बनता जाता है सपना।
मेरे सपनों में कलरव का संसार आँख जब खोल रहा,
अनुराग समीरों पर तिरता था इतराता-सा डोल रहा।
अभिलाषा अपने यौवन में उठती उस सुख के स्वागत को,
जीवन भर के बल-वैभव से सत्कृत करती दूरागत को।
किरणों की रज्जु समेट लिया जिसका अवलम्बन ले चढ़ती,
रस के निर्झर में धँस कर मैं आनन्द-शिखर के प्रति बढ़ती।
छूने में हिचक, देखने में पलकें आँखों पर झुकती हैं,
कलरव परिहास भरी गूँजें अधरों तक सहसा रुकती हैं।
संकेत कर रही रोमाली चुपचाप बरजाती खड़ी रही,
भाषा बन भौहों की काली रेखा-सी भ्रम में पड़ी रही।
तुम कौन! हृदय की परवशता? सारी स्वतंत्रता छीन रही,
स्वच्छंद सुमन जो खिले रहे जीवन-वन से हो बीन रही!"

संध्या की लाली में हँसती, उसका ही आश्रय लेती-सी,
छाया प्रतिमा गुनगुना उठी, श्रद्धा का उत्तर देती-सी।

"इतना न चमकृत हो बाले! अपने मन का उपकार करो,
मैं एक पकड़ हूँ जो कहती ठहरो कुछ सोच-विचार करो।
अंबर-चुंबी हिम-श्रृंगों से कलरव कोलाहल साथ लिये,
विद्युत की प्राणमयी धारा बहती जिसमें उन्माद लिये।
मंगल कुंकुम की श्री जिसमें निखरी हो ऊषा की लाली,
भोला सुहाग इठलाता हो ऐसा हो जिसमें हरियाली,
हो नयनों का कल्याण बना आनन्द सुमन-सा विकसा हो,
वासंती के वन-वैभव में जिसका पंचमस्वर पिक-सा हो,
जो गूँज उठे फिर नस-नस में मूर्छना समान मचलता-सा,
आँखों के साँचे में आकर रमणीय रूप बन ढलता-सा,
नयनों की नीलम की घाटी जिस रस घन से छा जाती हो,
वह कौंध कि जिससे अन्तर की शीतलता ठंडक पाती हो,
हिल्लोल भरा हो ऋतुपति का गोधुली की सी ममता हो,
जागरण प्रात-सा हँसता हो जिसमें मध्याह्न निखरता हो,
हो चकित निकल आई सहसा जो अपने प्राची के घर से,
उस नवल चंद्रिका-से बिछले जो मानस की लहरों पर से,
फूलों की कोमल पंखड़ियाँ बिखरें जिसके अभिनन्दन में,
मकरंद मिलाती हों अपना स्वागत के कुंकुम चन्दन में,
कोमल किसलय मर्मर-रव-से जिसका जयघोष सुनाते हों,
जिसमें दुःख सुख मिलकर मन के उत्सव आनंद मनाते हों,
उज्ज्वल वरदान चेतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं,
जिसमें अनंत अभिलाषा के सपने सब जगते रहते हैं।
मैं उसई चपल की धात्री हूँ, गौरव महिमा हूँ सिखलाती,
ठोकर जो लगने वाली है उसको धीरे से समझाती,
मैं देव-सृष्टि की रति-रानी निज पंचबाण से वंचित हो,
बन आवर्जना-मूर्ति दीना अपनी अतृप्ति-सी संचित हो,
अवशिष्ट रह गई अनुभव में अपनी अतीत असफलता-सी,
लीला विलास की खेद-भरी अवसादमयी श्रम-दलिता-सी,
मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ मैं शालीनता सिखाती हूँ,

मतवाली सुन्दरता पग में नूपुर सी लिपट मनाती हूँ,
लाली बन सरल कपोलों में आँखों में अंजन सी लगती,
कुंचित अलकों सी घुँघराली मन की मरोर बनकर जगती,
चंचल किशोर सुन्दरता की मैं करती रहती रखवाली,
मैं वह हलकी सी मसलन हूँ जो बनती कानों की लाली।"

"हाँ, ठीक, परन्तु बताओगी मेरे जीवन का पथ क्या है?
इस निविड निशा में संसृति की आलोकमयी रेखा क्या है?
यह आज समझ तो पाई हूँ मैं दुर्बलता में नारी हूँ,
अवयव की सुन्दर कोमलता लेकर मैं सबसे हारी हूँ।
पर मन भी क्यों इतना ढीला अपने ही होता जाता है,
घनश्याम-खंड-सी आँखों में क्यों सहसा जल भर आता है?
सर्वस्व-समर्पण करने की विश्वास-महा-तरु-छाया में,
चुपचाप पड़ी रहने की क्यों ममता जगती हैं माया में?
छायापथ में तारक-द्युति सी झिलमिल करने की मधु-लीला,
अभिनय करती क्यों इस मन में कोमल निरीहता श्रम-शीला?
निस्संबल होकर तिरती हूँ इस मानस की गहराई में,
चाहती नहीं जागरण कभी सपने की इस सुघराई में।
नारी जीवन की चित्र यही क्या? विकल रंग भर देती हो,
अस्फुट रेखा की सीमा में आकार कला को देती हो।
रुकती हूँ और ठहरती हूँ पर सोच-विचार न कर सकती,
पगली-सी कोई अंतर में बैठी जैसे अनुदित बकती।
मैं जभी तोलने का करती उपचार स्वयं तुल जाती हूँ,
भुजलता फँसा कर नर-तरु से झूले-सी झोंके खाती हूँ।
इस अर्पण में कुछ और नहीं केवल उत्सर्ग छलकता है,
मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ, इतना ही सरल झलकता है।
"क्या कहती हो ठहरो नारी! संकल्प-अश्रु जल से अपने -
तुम दान कर चुकी पहले ही जीवन के सोने-से सपने।
नारी! तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास-रजत-नग पगतल में,
पीयूष-स्रोत बहा करो जीवन के सुंदर समतल में।
देवों की विजय, दानवों की हारों का होता युद्ध रहा,
संघर्ष सदा उर-अंतर में जीवित रह नित्य-विरुद्ध रहा।

आँसू से भीगे अंचल पर मन का सब कुछ रखना होगा -
तुमको अपनी स्मित रेखा से यह संधिपत्र लिखना होगा।"

- जयशंकर प्रसाद



कामायनी
(‘निर्वेद’ परिच्छेद के कुछ छंद)

"तुमुल कोलाहल कलह में
मैं हृदय की बात रे मन!

विकल होकर नित्य चंचल,
खोजती जब नींद के पल,
चेतना थक-सी रही तब,
मैं मलय की बात रे मन!

चिर-विषाद-विलीन मन की,
इस व्यथा के तिमिर-वन की;
मैं उषा-सी ज्योति-रेखा,
कुसुम-विकसित प्रात रे मन!

जहाँ मरु-ज्वाला धधकती,
चातकी कन को तरसती,
उन्हीं जीवन-घाटियों की,
मैं सरस बरसात रे मन!

पवन की प्राचीर में रुक
जला जीवन जी रहा झुक,
इस झुलसते विश्व-दिन की
मैं कुसुम-ऋतु-रात रे मन!

चिर निराशा नीरधर से,
प्रतिच्छायित अश्रु-सर में,
मधुप-मुखर-मरंद-मुकुलित,
मैं सजल जलजात रे मन!"



प्रयाणगीत

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती -
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती -
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ हैं - बढ़े चलो बढ़े चलो।

असंख्य कीर्ति-रश्मियाँ विकीर्ण दिव्य दाह-सी।
सपूत मातृभूमि के रुको न शूर साहसी।
अराति सैन्य सिंधु में - सुबाडवाग्नि से जलो,
प्रवीर हो जयी बनो - बढ़े चलो बढ़े चलो।

- जयशंकर प्रसाद



आज नदी बिलकुल उदास थी

आज नदी बिलकुल उदास थी।
सोयी थी अपने पानी में,
उसके दर्पण पर -
बादल का वस्त्र पड़ा था।
मैंने उसे नहीं जगाया,
दबे पाँव घर वापस आया।

- केदारनाथ अग्रवाल



बसंती हवा

हवा हूँ, हवा मैं
बसंती हवा हूँ।

सुनो बात मेरी -
अनोखी हवा हूँ।
बड़ी बावली हूँ,
बड़ी मस्तमौला।
नहीं कुछ फिकर है,
बड़ी ही निडर हूँ।
जिधर चाहती हूँ,
उधर घूमती हूँ,
मुसाफिर अजब हूँ।

न घर-बार मेरा,
न उद्देश्य मेरा,
न इच्छा किसी की,
न आशा किसी की,
न प्रेमी न दुश्मन,
जिधर चाहती हूँ
उधर घूमती हूँ।
हवा हूँ, हवा मैं
बसंती हवा हूँ!

जहाँ से चली मैं
जहाँ को गई मैं -
शहर, गाँव, बस्ती,
नदी, रेत, निर्जन,
हरे खेत, पोखर,
झुलाती चली मैं।
झुमाती चली मैं!
हवा हूँ, हवा मैं

बसंती हवा हूँ।

चढ़ी पेड़ महुआ,
थपाथप मचाया;
गिरी धम्म से फिर,
चढ़ी आम ऊपर,
उसे भी झकोरा,
किया कान में 'कू',
उतरकर भगी मैं,
हरे खेत पहुँची -
वहाँ, गेहूँओं में
लहर खूब मारी।

पहर दो पहर क्या,
अनेकों पहर तक
इसी में रही मैं!
खड़ी देख अलसी
लिए शीश कलसी,
मुझे खूब सूझी -
हिलाया-झुलाया
गिरी पर न कलसी!
इसी हार को पा,
हिलाई न सरसों,
झुलाई न सरसों,
हवा हूँ, हवा मैं
बसंती हवा हूँ!

मुझे देखते ही
अरहरी लजाई,
मनाया-बनाया,
न मानी, न मानी;
उसे भी न छोड़ा -
पथिक आ रहा था,

उसी पर ढकेला;
हँसी ज़ोर से मैं,
हँसी सब दिशाएँ,
हँसे लहलहाते
हरे खेत सारे,
हँसी चमचमाती
भरी धूप प्यारी;
बसंती हवा में
हँसी सृष्टि सारी!
हवा हूँ, हवा में
बसंती हवा हूँ!

- केदारनाथ अग्रवाल



कर्म

कर्म दैविक सम्पदा का द्वार है;
विश्व के उत्कर्ष का आधार है।

कर्म पूजा, साधना का धाम है;
कर्मयोगी को कहाँ विश्राम है।

कर्म भावी योजना का न्यास है;
सत्य-चित्त-आनन्द का अभ्यास है।

कर्म जीवन का मधुरतम काव्य है;
कर्म से ही मुक्ति भी सम्भाव्य है।

- किरीटचन्द्र जोशी



आगत का स्वागत

मुँह ढाँक कर सोने से बहुत अच्छा है,
कि उठो ज़रा,
कमरे की गर्द को ही झाड़ लो।
शेल्फ़ में बिखरी किताबों का ढेर,
तनिक चुन दो।
छितरे-छितराए सब तिनकों को फेंको।
खिड़की के उड़के हुए,
पल्लों को खोलो।
ज़रा हवा ही आए।
सब रौशन कर जाए।
... हाँ, अब ठीक
तनिक आहट से बैठो,
जाने किस क्षण कौन आ जाए।
खुली हुई फ़िज़ाँ में,
कोई गीत ही लहर जाए।
आहट में ऐसे प्रतीक्षातुर देख तुम्हें,
कोई फ़रिश्ता ही आ पड़े।
माँगने से जाने क्या दे जाए।
नहीं तो स्वर्ग से निर्वासित,
किसी अप्सरा को ही,
यहाँ आश्रय दीख पड़े।
खुले हुए द्वार से बड़ी संभावनाएँ हैं मित्र!
नहीं तो जाने क्या कौन,
दस्तक दे-देकर लौट जाएँगे।
सुनो,
किसी आगत की प्रतीक्षा में बैठना,
मुँह ढाँक कर सोने से बहुत बेहतर है।

- कीर्ति चौधरी



गीत-कवि की व्यथा - एक

ओ लेखनी! विश्राम कर
अब और यात्रायें नहीं।

मंगल कलश पर
काव्य के अब शब्द
के स्वस्तिक न रच।
अक्षम समीक्षायें
परख सकतीं न
कवि का झूठ-सच।

लिख मत गुलाबी पंक्तियाँ
गिन छन्द, मात्रायें नहीं।

बन्दी अंधेरे
कक्ष में अनुभूति की
शिल्पा छुअन।
वादों-विवादों में
घिरा साहित्य का
शिक्षा सदन।

अनगिन प्रवक्ता हैं यहाँ
बस, छात्र-छात्रायें नहीं।

- किशन सरोज



गीत-कवि की व्यथा - दो

इस गीत-कवि को क्या हुआ?
अब गुनगुनाता तक नहीं।

इसने रचे जो गीत
जग ने पत्रिकाओं
में पढ़े।
मुखरित हुए
तो भजन-जैसे
अनगिनत होठों चढ़े।

होंठों चढ़े, वे मन-बिंधे
अब गीत गाता तक नहीं।

अनुराग, राग
विराग पर सौ
व्यंग-शर इसने सहे।
जब-जब हुए
गीले नयन तब-तब
लगाये कहकहे।

वह अट्टहासों का धनी
अब मुस्कुराता तक नहीं।

मेलों तमाशों में
लिए इसको फिरी
आवारगी।
कुछ ढूँढती-सी
दृष्टि में हर शाम
मधुशाला जगी।

अब भीड़ दिखती है जिधर
उस ओर जाता तक नहीं।



मेरी ज़िद

तेरी कोशिश, चुप हो जाना,
मेरी ज़िद है, शंख बजाना ...

ये जो सोये, उनकी नींदें
सीमा से भी ज्यादा गहरी
अब तक जाग नहीं पाये वे
सर तक है आ गई दुपहरी;
कब से उन्हें, पुकार रहा हूँ
तुम भी कुछ, आवाज़ मिलाना...

तट की घेराबंदी करके
बैठे हैं सारे के सारे,
कोई मछली छूट न जाये
इसी दाँव में हैं मछुआरे.....
मैं उनको ललकार रहा हूँ,
तुम जल्दी से जाल हटाना.....

ये जो गलत दिशा अनुगामी
दौड़ रहे हैं, अंधी दौड़ें,
अच्छा हो कि हिम्मत करके
हम इनकी हठधर्मी तोड़ें.....
मैं आगे से रोक रहा हूँ -
तुम पीछे से हाँक लगाना

- कृष्ण वक्षी



विदा के क्षण

मैं अपने
इस तुच्छ एकाकीपन से ही
इतना विचलित हो जाता हूँ
तो सागर!

तुम अपना यह विराट अकेलापन
कैसे झेलते हो?

समय के अन्तहीन छोरों में
इस क्षितिज से उस क्षितिज तक
यह साँ-साँ करता हुआ

फुफकारता सन्नाटा -
युगों की उड़ती धूल में
अन्तहीन रेगिस्तान का
निपट एकाकी सफ़र -

सदियों से जागती
खुली हुई आँखों में
महीन रेत-सी किरकिराती
असीम प्रतीक्षा!

- सचमुच

सागर, तुम्हें यों
अकेला छोड़ कर जाने का
मन नहीं होता
लेकिन तुम्हारे पास रह कर भी
क्या कोई
तुम्हारे अकेलेपन को बाँट सकता है?

वह कौन है
जो अनादि से अनन्त तक
तुम्हारा हाथ थामे चल सके,
गहरे निःश्वासों के साथ
उठते-गिरते तुम्हारे वक्ष को सहलाये?
किस के कान
तुम्हारी धड़कनों को सुन सकेंगे,
कौन से हाथ

तुम्हारे माथे पर पड़ी
दर्द की सलवटों को हटायेंगे
या बिखरे हुए बालों को
सँवारने का साहस जुटा पायेंगे?
किस का अगाध प्यार
तुम्हारे एकाकीपन को भी भिगो पायेगा?

मुझे तो लगता है
ओ सागर,
अकेला होना
हर विराट् की नियति है।
वह एक से अनेक होने की
कितनी ही चेष्टा करे
अपनी ही माया से, लीला से,
लहराती लहरों से
खुद को बहलाये
पर अनन्तः रहता एकाकी है।

- फिर भी
तुम्हें छोड़ कर जाते हुए
मन कुछ उदास हुआ जाता है -
(शायद यही मोह है, शायद यही अहं है!)

- तुम्हारे पास
एक अजनबी-सी
पहचान लिये आया था
एक विराट् अकेलेपन का
एक अकिंचन-सा कण ले कर जा रहा हूँ!

- कुलजीत



बक्सों में यादें

बक्सों में बन्द हैं यादें
हर कपड़ा एक याद है
जिसे तुम्हारे हाथों ने तह किया था
धोबी ने धोते समय इन को रगड़ा था
पीटा था
मैल कट गया पर ये न कटीं
यह और अन्दर चली गयीं
हम ने निर्मम होकर इन्हें उतार दिया
इन्होंने कुछ नहीं कहा
पर हर बार
ये हमारा कुछ अंश ले गयीं
जिसे हम जान न सके
त्वचा से इन का जो सम्बन्ध है वह रक्त तक है
रक्त का सारा उबाल इन्होंने सहा है
इन्हें खोल कर देखो
इन में हमारे खून की खुशबू ज़रूर होगी
अभी ये मौन है
पर इन की एक-एक परत में जो मन छिपा है
वह हमारे जाने के बाद बोलेगा
यादें आदमी के बीत जाने के बाद ही बोलती हैं
बक्सों में बन्द रहने दो इन्हें
जब पूरी फुरसत हो तब देखना
इन का वार्तालाप बड़ा ईर्ष्यालू है
कुछ और नहीं करने देगा।

- कुमार रवीन्द्र



वाणी वैभव

मातृभाषा भिन्न है विभिन्न भाषाभाषियों की,
भिन्न भिन्न भाँति बोली लिखी पढ़ी जाती है।
अवधी, बिहारी, ब्रज, बँगला, मराठी, सिन्धी,
कन्नड़, कोंकण, मारवाड़ी, गुजराती है॥
तेलगू, तमिल मुशकिल गिन पाना किन्तु,
एक बात "वंचक" समान पाई जाती है।
लेते ही जनम "कहाँ-कहाँ" कहते हैं सभी,
सभी की प्राकृत भाषा एक ही लखाती है॥

आके धराधाम पे तमाम सह यातनायें,
मानव माल आँख है प्रथम जब खोलता।
जननी-जनक चाहे जिस भाषा के हों भाषी,
विवश जिज्ञासा "कहाँ-कहाँ" ही है बोलता॥
"क" से "ह" है व्यंजन औ स्वर "अ" से "अँ" तलक,
इन्ही से बना के शब्द भाव है किलोलता।
"वंचक" है भाषा यही सभी की प्राकृत एक,
अज्ञ वो है जो है अन्य और को टटोलता॥

- लक्ष्मीकान्त मिश्र "वंचक"



अनुनय

मेरे अधर अधर से छू लेने दो!
अधर अधर से छू लेने दो!
है बात वही, मधुपाश वही,
सुरभीसुधारस पी लेने दो!
अधर अधर से छू लेने दो!
कंवल पंखुरी लाल लजीली,
है थिरक रही, नई कुसुमसी!
रश्मिनूतन को, सह लेने दो!
मेरे अधर अधर से छू लेने दो!
तुम जीवन की मदमाती लहर,
है वही डगर,
डगमग पगभर,
सुखसुमन-सुधा रस पी लेने दो!
मेरे अधर अधर से छू लेने दो!
अधर अधर से छू लेने दो!

- **लावण्या शाह**



स्मृति दीप

भग्न उर की कामना के दीप,
तुम, कर में लिये,
मौन, निमंत्रण, विषम, किस साध में हो बाँटती?
है प्रज्वलित दीप, उद्दीपित करो पें,
नैन में असुवन झड़ी!
है मौन, होठों पर प्रकम्पित,
नाचती, ज्वाला खड़ी!
बहा दो अंतिम निशानी, जल के अंधेरे पाट पे,
' स्मृतिदीप ' बन कर बहेगी, यातना, बिछुड़े स्वजन की!
एक दीप गंगा पे बहेगा,
रोयेंगी, आँखें तुम्हारी।
धुप अँधकाररात्रि का तमसा।
पुकारता प्यार मेरा तुझे, मरण के उस पार से!
बहा दो, बहा दो दीप को
जल रही कोमल हथेली!
हा प्रिया! यह रात्रिवेला औ
सूना नीरवसा नदी तट!
नाचती लौ में धूल मिलेंगी,
प्रीत की बातें हमारी!

- लावण्या शाह



गांव

एक अंधेरा, एक खामोशी, और तनहाई,
रात के तीन पांव होते हैं।
ज़िन्दगी की सुबह के चेहरे पर,
रास्ते धूप छाँव होते हैं।

ज़िन्दगी के घने बियाबाँ में,
प्यार के कुछ पड़ाव होते हैं।
अजनबी शहरों में, अजनबी लोगों के बीच,
दोस्तों के भी गांव होते हैं।

- मधुप मोहता



रोशनी

रात, हर रात बहुत देर गए,
तेरी खिड़की से, रोशनी छनकर,
मेरे कमरे के दरो-दीवारों पर,
जैसे दस्तक सी दिया करती है।

मैं खोल देता हूँ चुपचाप किवाड़,
रोशनी पे सवार तेरी परछाई,
मेरे कमरे में उतर आती है,
सो जाती है मेरे साथ मेरे बिस्तर पर।

- मधुप मोहता



कौन तुम मेरे हृदय में?

कौन तुम मेरे हृदय में?
कौन मेरी कसक में नित
मधुरता भरता अलक्षित?
कौन प्यासे लोचनों में
घुमड़ घिर झरता अपरिचित?
स्वर्ण स्वप्नों का चितेरा
नींद के सूने निलय में!
कौन तुम मेरे हृदय में?
अनुसरण निश्वास मेरे
कर रहे किसका निरन्तर?
चूमने पदचिन्ह किसके
लौटते यह श्वास फिर फिर?
कौन बन्दी कर मुझे अब
बँध गया अपनी विजय मे?
कौन तुम मेरे हृदय में?
एक करुण अभाव चिर -
तृप्ति का संसार संचित,
एक लघु क्षण दे रहा
निर्वाण के वरदान शत-शत;
पा लिया मैंने किसे इस
वेदना के मधुर क्रय में?
कौन तुम मेरे हृदय में?
गूँजता उर में न जाने
दूर के संगीत-सा क्या!
आज खो निज को मुझे
खोया मिला विपरीत-सा क्या!
क्या नहा आई विरह-निशि
मिलन-मधुदिन के उदय में?
कौन तुम मेरे हृदय में?
तिमिर-पारावार में
आलोक-प्रतिमा है अकम्पित;
आज ज्वाला से बरसता

क्यों मधुर घनसार सुरभित?
सुन रही हूँ एक ही
झंकार जीवन में, प्रलय में?
कौन तुम मेरे हृदय में?

मूक सुख-दुख कर रहे
मेरा नया श्रृंगार-सा क्या?
झूम गर्वित स्वर्ग देता -
नत धरा को प्यार-सा क्या?
आज पुलकित सृष्टि क्या
करने चली अभिसार लय में?
कौन तुम मेरे हृदय में?

- महादेवी वर्मा



-

मेरे दीपक

मधुर मधुर मेरे दीपक जल!
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल;
प्रियतम का पथ आलोकित कर!

सौरभ फैला विपुल धूप बन;
मृदुल मोम-सा घुल रे मृदु तन;
दे प्रकाश का सिंधु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल-गल!
पुलक-पुलक मेरे दीपक जल!

सारे शीतल कोमल नूतन,
माँग रहे तुझको ज्वाला-कण;
विश्वशलभ सिर धुन कहता "मैं
हाय न जल पाया तुझमें मिल"!
सिहर-सिहर मेरे दीपक जल!

जलते नभ में देख असंख्यक;
स्नेहहीन नित कितने दीपक;
जलमय सागर का उर जलता;
विद्युत ले घिरता है बादल!
विहंस-विहंस मेरे दीपक जल!

द्रुम के अंग हरित कोमलतम,
ज्वाला को करते हृदयंगम;
वसुधा के जड़ अंतर में भी,
बन्दी नहीं है तापों की हलचल!
बिखर-बिखर मेरे दीपक जल!

मेरे निश्वासों से द्रुततर,
सुभग न तू बुझने का भय कर;

में अंचल की ओट किये हूँ,
अपनी मृदु पलकों से चंचल!
सहज-सहज मेरे दीपक जल!

सीमा ही लघुता का बन्धन,
है अनादि तू मत घड़ियाँ गिन;
में दृग के अक्षय कोशों से -
तुझमें भरती हूँ आँसू-जल!
सजल-सजल मेरे दीपक जल!

तम असीम तेरा प्रकाश चिर;
खेलेंगे नव खेल निरन्तर;
तम के अणु-अणु में विद्युत सा -
अमिट चित्र अंकित करता चल!
सरल-सरल मेरे दीपक जल!

तू जल जल होता जितना क्षय;
वह समीप आता छलनामय;
मधुर मिलन में मिट जाना तू -
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल-खिल!
मदिर-मदिर मेरे दीपक जल!

प्रियतम का पथ आलोकित कर!

- महादेवी वर्मा



पंथ होने दो अपरिचित

पंथ होने दो अपरिचित
प्राण रहने दो अकेला!

और होंगे चरण हारे,
अन्य हैं जो लौटते दे शूल को संकल्प सारे;
दुखव्रती निर्माण-उन्मद
यह अमरता नापते पद;
बाँध देंगे अंक-संसृति से तिमिर में स्वर्ण बेला!

दूसरी होगी कहानी
शून्य में जिसके मिटे स्वर, धूलि में खोई निशानी;
आज जिसपर प्यार विस्मित,
मैं लगाती चल रही नित,
मोतियों की हाट औ, चिनगारियों का एक मेला!

हास का मधु-दूत भेजो,
रोष की भ्रूभंगिमा पतझार को चाहे सहेजो;
ले मिलेगा उर अचंचल
वेदना-जल स्वप्न-शतदल,
जान लो, वह मिलन-एकाकी विरह में है दुकेला!

- महादेवी वर्मा



प्रिय चिरन्तन है सजनि

प्रिय चिरन्तन है सजनि,
क्षण क्षण नवीन सुहागिनी मैं!

श्वास में मुझको छिपा कर वह असीम विशाल चिर घन,
शून्य में जब छा गया उसकी सजीली साध-सा बन,
छिप कहाँ उसमें सकी
बुझ-बुझ जली चल दामिनी मैं!

छाँह को उसकी सजनि नव आवरण अपना बना कर,
धूलि में निज अश्रु बोने मैं पहर सूने बिता कर,
प्रात में हँस छिप गई
ले छलकते दृग यामिनी मैं!

मिलन-मन्दिर में उठा दूँ जो सुमुख से सजल गुण्ठन,
मैं मिट्टें प्रिय में मिटा ज्यों तप्त सिकता में सलिल-कण,
सजनि मधुर निजत्व दे
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं!

दीप-सी युग-युग जलूँ पर वह सुभग इतना बता दे,
फूँक से उसकी बुझूँ तब क्षार ही मेरा पता दे!
वह रहे आराध्य चिन्मय
मृण्मयी अनुरागिनी मैं!

सजल सीमित पुतलियाँ पर चित्र अमिट असीम का वह,
चाह वह अनन्त बसती प्राण किन्तु ससीम सा यह,
रज-कणों में खेलती किस
विरज विधु की चाँदनी मैं?

- महादेवी वर्मा



तुम मुझमें प्रिय! फिर परिचय क्या

तुम मुझमें प्रिय! फिर परिचय क्या
तारक में छवि, प्राणों में स्मृति,
पलकों में नीरव पद की गति,
लघु उर में पुलकों की संसृति,
भर लाई हूँ तेरी चंचल
और करूँ जग में संचय क्या!

तेरा मुख सहास अरुणोदय,
परछाई रजनी विषादमय,
वह जागृति वह नींद स्वप्नमय,
खेलखेल थकथक सोने दे
मैं समझूँगी सृष्टि प्रलय क्या!

तेरा अधरविचुंबित प्याला
तेरी ही स्मितमिश्रित हाला,
तेरा ही मानस मधुशाला,
फिर पूछूँ क्या मेरे साकी!
देते हो मधुमय विषमय क्या?

रोमरोम में नंदन पुलकित,
साँससाँस में जीवन शतशत,
स्वप्न स्वप्न में विश्व अपरिचित,
मुझमें नित बनते मिटते प्रिय!
स्वर्ग मुझे क्या निष्क्रिय लय क्या?

हारूँ तो खोऊँ अपनापन
पाऊँ प्रियतम में निर्वासन,
जीत बनूँ तेरा ही बंधन
भर लाऊँ सीपी में सागर
प्रिय मेरी अब हार विजय क्या?

चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर संगम,
तू असीम मैं सीमा का भ्रम,
काया छाया में रहस्यमय।
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या
तुम मुझमें प्रिय! फिर परिचय क्या

- महादेवी वर्मा



सोये हैं पेड़

कुहरे में
सोये हैं पेड़।
पत्ता-पत्ता नम है
यह सबूत क्या कम है

लगता है
लिपट कर टहनियों से
बहुत-बहुत
रोये हैं पेड़।

जंगल का घर छूटा,
कुछ कुछ भीतर टूटा
शहरों में
बेघर होकर जीते
सपनों में खोये हैं पेड़।

- माहेश्वर तिवारी



माँ कह एक कहानी

"माँ कह एक कहानी।"

बेटा समझ लिया क्या तूने मुझको अपनी नानी?"

"कहती है मुझसे यह चेटी, तू मेरी नानी की बेटा

कह माँ कह लेटी ही लेटी, राजा था या रानी?"

माँ कह एक कहानी।"

"तू है हठी, मानधन मेरे, सुन उपवन में बड़े सवेरे,

तात भ्रमण करते थे तेरे, जहाँ सुरभी मनमानी।"

"जहाँ सुरभी मनमानी! हाँ माँ यही कहानी।"

वर्ण वर्ण के फूल खिले थे, झलमल कर हिमबिंदु झिले थे,
हलके झोंके हिले मिले थे, लहराता था पानी।"

"लहराता था पानी, हाँ हाँ यही कहानी।"

"गाते थे खग कल कल स्वर से, सहसा एक हँस ऊपर से,
गिरा बिद्ध होकर खर शर से, हुई पक्षी की हानी।"

"हुई पक्षी की हानी? करुणा भरी कहानी!"

चौक उन्होंने उसे उठाया, नया जन्म सा उसने पाया,
इतने में आखेटक आया, लक्ष सिद्धि का मानी।"

"लक्ष सिद्धि का मानी! कोमल कठिन कहानी।"

"माँगा उसने आहत पक्षी, तेरे तात किन्तु थे रक्षी,
तब उसने जो था खगभक्षी, हठ करने की ठानी।"

"हठ करने की ठानी! अब बढ चली कहानी।"

हुआ विवाद सदय निर्दय में, उभय आग्रही थे स्वविषय में,
गयी बात तब न्यायालय में, सुनी सब ने जानी।"

"सुनी सब ने जानी! व्यापक हुई कहानी।"

राहुल तू निर्णय कर इसका, न्याय पक्ष लेता है किसका?"

"माँ मेरी क्या बानी? मैं सुन रहा कहानी।

कोई निरपराध को मारे तो क्यों न उसे उबारे?

रक्षक पर भक्षक को वारे, न्याय दया का दानी।"

"न्याय दया का दानी! तूने गुणी कहानी।"

- मैथिलीशरण गुप्त



सखि, वे मुझसे कहकर जाते

(यशोधरा)

सखि, वे मुझसे कहकर जाते,
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते?

मुझको बहुत उन्होंने माना
फिर भी क्या पूरा पहचाना?
मैंने मुख्य उसी को जाना
जो वे मन में लाते।

सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को, प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में -
क्षात्र-धर्म के नाते।

सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

हुआ न यह भी भाग्य अभागा,
किसपर विफल गर्व अब जागा?
जिसने अपनाया था, त्यागा;
रहे स्मरण ही आते!

सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

नयन उन्हें हैं निष्ठुर कहते,
पर इनसे जो आँसू बहते,
सदय हृदय वे कैसे सहते?
गये तरस ही खाते!

सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

जायें, सिद्धि पावें वे सुख से,
दुखी न हों इस जन के दुख से,

उपालम्भ ढूँँ मैं किस मुख से?
आज अधिक वे भाते!
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

गये, लौट भी वे आवेंगे,
कुछ अपूर्व-अनुपम लावेंगे,
रोते प्राण उन्हें पावेंगे,
पर क्या गाते-गाते?
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

- मैथिलीशरण गुप्त



पुष्प की अभिलाषा

चाह नहीं मैं सुरबाला के
गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं, प्रेमी-माला में
बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं, सम्राटों के शव
पर हे हरि, डाला जाऊँ,
चाह नहीं, देवों के सिर पर
चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड़ लेना वनमाली!
उस पथ पर देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पर जावें वीर अनेक

- माखनलाल चतुर्वेदी



पेड़, मैं और सब

पेड़ नहीं हैं, उठी हुई
धरती की बाहें हैं
तेरे मेरे लिए माँगती
रोज दुआएँ हैं।
पेड़ नहीं हैं ये धरती की
खुली निगाहें हैं
तेरे मेरे लिए निरापद
करती राहे हैं।
पेड़ नहीं ये पनपी धरती
गाहे गाहे हैं
तेरे मेरे जी लेने की
विविध विधाएँ हैं।
पेड़ नहीं ये धरती ने
यत्न जुटाए हैं
तेरे मेरे लिए खुशी के
रत्न लुटाये हैं।
पेड़ नहीं ये धरती ने
चित्र बनाए हैं
तेरे मेरे लिए अनेकों
मित्र जुटाए हैं।
पेड़ नहीं ये धरती ने
चँवर डुलाए हैं।
तेरे मेरे लिए छाँह के
गगन छवाए हैं।
पेड़ नहीं ये धरती ने
अलख जगाए हैं
तेरे मेरे 'ढूँढ' के
जतन जताए हैं।
पेड़ नहीं है अस्तित्वों के
बीज बिजाए हैं
तेरे मेरे जीने के
विश्वास जुड़ाए हैं।

- मरुधर मृदुल



पानी उछाल के

आओ हम पतवार फेंककर
कुछ दिन हो लें नदी-ताल के।

नाव किनारे के खजूर से
बाँध बटोरं शंख-सीपियाँ
खुली हवा-पानी से सीखें
शर्म-हया की नई रीतियाँ

बाँचें प्रकृति पुरुष की भाषा
साथ-साथ पानी उछाल के।

लिख डालें फिर नये सिरे से
रँगें हुए पत्तों को धोकर
निजी दायरों से बाहर हो
रागहीन रागों में खोकर

आमंत्रण स्वीकारें उठकर
धूप-छाँव सी हरी डाल के।

नमस्कार पक्के घाटों को
नमस्कार तट के वृक्षों को

हो न सकें यदि लगातार
तब जी लें सुख हम अंतराल के।

- नईम



आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?

आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?
आज से दो प्रेम योगी, अब वियोगी ही रहेंगे!
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?

सत्य हो यदि, कल्प की भी कल्पना कर, धीर बांधूँ,
किन्तु कैसे व्यर्थ की आशा लिये, यह योग साधूँ!
जानता हूँ, अब न हम तुम मिल सकेंगे!
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?

आयेगा मधुमास फिर भी, आयेगी श्यामल घटा घिर,
आँख भर कर देख लो अब, मैं न आऊँगा कभी फिर!
प्राण तन से बिछुड़ कर कैसे रहेंगे!
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?

अब न रोना, व्यर्थ होगा, हर घड़ी आँसू बहाना,
आज से अपने वियोगी, हृदय को हँसना सिखाना,
अब न हँसने के लिये, हम तुम मिलेंगे!
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?

आज से हम तुम गिनेंगे एक ही नभ के सितारे
दूर होंगे पर सदा को, ज्यों नदी के दो किनारे
सिन्धुतट पर भी न दो जो मिल सकेंगे!
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?

तट नदी के, भग्न उर के, दो विभागों के सदृश हैं,
चीर जिनको, विश्व की गति बह रही है, वे विवश है!
आज अथइति पर न पथ में, मिल सकेंगे!
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?

यदि मुझे उस पार का भी मिलन का विश्वास होता,

सच कहूँगा, न मैं असहाय या निरुपाय होता,
किन्तु क्या अब स्वप्न में भी मिल सकेंगे?
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?

आज तक हुआ सच स्वप्न, जिसने स्वप्न देखा?
कल्पना के मृदुल कर से मिटी किसकी भाग्यरेखा?
अब कहाँ सम्भव कि हम फिर मिल सकेंगे!
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?

आह! अन्तिम रात वह, बैठी रहीं तुम पास मेरे,
शीश कांधे पर धरे, घन कुन्तलों से गात घेरे,
क्षीण स्वर में कहा था, "अब कब मिलेंगे?"
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?

"कब मिलेंगे", पूछता मैं, विश्व से जब विरह कातर,
"कब मिलेंगे", गूँजते प्रतिध्वनिनिनादित व्योम सागर,
"कब मिलेंगे", प्रश्न उत्तर "कब मिलेंगे"!
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?

- पं. नरेन्द्र शर्मा



अधूरी साधना

प्रियतम मेरे,
सब भिन्न भिन्न बुनते हैं
गुलदस्तों को,
भावनाओं से,
विचारों से।
मैं तुम्हे बुनूँ
अपनी साँसों से।
भावनायें स्थिर हो जाएँ,
विचारधारा भी,
होंठ भी मौन रहे -
और हर श्वास
नित तुम्हारा नाम कहे -
और तुम बुनते रहो।

एक घड़ी आएगी फिर
मेरी बंद पलकों के सम्मुख
तुम निराकार साकार होगे।
तुम बाहों में अपनी,
मेरी साँसों को समेट लोगे।
फिर न होगा मिलना,
न बिछड़ना, न जन्म-मरण,
न मैं।
सिर्फ तुम मेरे प्रियतम -
अपना स्वरूप पाकर -
अनंत।

- नीलकमल



चुप सी लगी है

चुप सी लगी है।
अन्दर ज़ोर
एक आवाज़ दबी है।
वह दबी चीख
निकलेगी कब?
ज़िन्दगी आखिर
शुरू होगी कब?
कब?

खुले मन से हंसी
कब आएगी?
इस दिल में खुशी
कब खिलखिलाएगी?
बरसों इस जाल में बंधी,
प्यास अभी भी है।
अपने पथ पर चल पाऊँगी,
आस अभी भी है।
पर इन्तज़ार में
दिल धीरे धीरे मरता है
धीरे धीरे पिसता है मन,
शेष क्या रहता है?

डर है, एक दिन
यह धीरज न टूट जाए
रोको न मुझे,
कहीं ज्वालामुखी फूट जाए।
वह फूटा तो
इस श्री सृजन को
कैसे बचाऊँगी?
विश्व में मात्र एक
किस्सा बन रह जाऊँगी।

समय की गहराइयों में
खो जाऊँगी।

- नीलकमल



वहीं से

हम जहाँ हैं
वहीं से आगे बढ़ेंगे।
देश के बंजर समय के
बाँझपन में
याकि अपनी लालसाओं के
अंधेरे सघन वन में

या अगर हैं
परिस्थितियों की तलहटी में
तो वहीं से बादलों के रूप में
ऊपर उठेंगे।
हम जहाँ हैं
वहीं से आगे बढ़ेंगे।

यह हमारी नियति है
चलना पड़ेगा
रात में दीपक
दिवस में सूर्य बन जलना पड़ेगा।

जो लड़ाई पूर्वजों ने छोड़ दी थी
हम लड़ेंगे
हम जहाँ हैं
वहीं से आगे बढ़ेंगे।

- ओम प्रभाकर



सुप्रभात

नयन का नयन से, नमन हो रहा है
लो उषा का आगमन हो रहा है
परत पर परत, चांदनी कट रही है
तभी तो निशा का, गमन हो रहा है
क्षितिज पर अभी भी हैं, अलसाये सपने
पलक खोल कर भी, शयन हो रहा है
झरोखों से प्राची की पहली किरण का
लहर से प्रथम आचमन हो रहा है
हैं नहला रहीं, हर कली को तुषारें
लगन पूर्व कितना जतन हो रहा है
वही शाख पर पक्षियों का है कलरव
प्रभातीसा लेकिन, सहन हो रहा है
बढ़ी जा रही जिस तरह से अरुणिमा
है लगता कहीं पर हवन हो रहा है
मधुर मुक्त आभा, सुगंधित पवन है
नये दिन का कैसा सृजन हो रहा है।

- प्रभाकर शुक्ला



फागुन के दोहे

ऐसी दौड़ी फगुनाहट ढाणी चौक फलांग
फागुन आया खेत में गये पड़ोसी जान।

आम बौराया आंगना कोयल चढ़ी अटार
चंग द्वार दे दादर मौसम हुआ बहार।

दूब फूल की गुदगुदी बतरस चढ़ी मिठास
मुलके दादी भामरी मौसम को है आसा।

वर गेहूं बाली सजा खड़ी फसल बारात
सुग्गा छेड़े पी कहाँ सरसों पीली गात।

ऋतु के मोखे सब खड़े पाने को सौगात
मानक बाँटे छाँट कर टेसू ढाक पलाश।

ठीठ छोरियाँ तितलियाँ रोकें राह वसंत
धरती सब क्यारी हुई अम्बर हुआ पतंग।

मौसम के मतदान में हुआ अराजक काम
पतझर में घायल हुए निरे पात पैगाम।

दबा बनारस पान को पीक दयई यौं डार
चैत गुनगुनी दोपहर गुलमोहर कचनार।

सजे माँडने आँगने होली के त्योहार
बुरी बलायें जल मरें शगुन सजाए द्वारा।

मन के आँगन रच गए कुंकुम अबीर गुलाल
लाली फागुन माह की बड़े साल दर साल।

- पूणिमा वर्मन



हम-तुम

जीवन कभी सूना न हो
कुछ मैं कहूँ, कुछ तुम कहो।

तुमने मुझे अपना लिया
यह तो बड़ा अच्छा किया
जिस सत्य से मैं दूर था
वह पास तुमने ला दिया

अब ज़िन्दगी की धार में
कुछ मैं बहूँ, कुछ तुम बहो।

जिसका हृदय सुन्दर नहीं
मेरे लिए पत्थर वही।
मुझको नई गति चाहिए
जैसे मिले वैसे सही।

मेरी प्रगति की साँस में
कुछ मैं रहूँ कुछ तुम रहो।

मुझको बड़ा सा काम दो
चाहे न कुछ आराम दो
लेकिन जहाँ थककर गिरूँ
मुझको वहीं तुम थाम लो।

गिरते हुए इन्सान को
कुछ मैं गहूँ कुछ तुम गहो।

संसार मेरा मीत है
सौंदर्य मेरा गीत है
मैंने अभी तक समझा नहीं
क्या हार है क्या जीत है

दुख-सुख मुझे जो भी मिले
कुछ मैं सहूँ कुछ तुम सहो।

- रमानाथ अवस्थी



लाचारी

न जाने क्या लाचारी है
आज मन भारी-भारी है

हृदय से कहता हूँ कुछ गा
प्राण की पीड़ित बीन बजा
प्यास की बात न मुँह पर ला

यहाँ तो सागर खारी है
न जाने क्या लाचारी है
आज मन भारी-भारी है

सुरभि के स्वामी फूलों पर
चढ़ये मैंने जब कुछ स्वर
लगे वे कहने मुरझाकर

ज़िन्दगी एक खुमारी है
न जाने क्या लाचारी है
आज मन भारी-भारी है

नहीं है सुधि मुझको तन की
व्यर्थ है मुझको चुम्बन भी
अजब हालत है जीवन की

मुझे बेहोशी प्यारी है
न जाने क्या लाचारी है
आज मन भारी-भारी है

- रमानाथ अवस्थी



रचना और तुम

मेरी रचना के अर्थ बहुत हैं
जो भी तुमसे लग जाय लगा लेना

मैं गीत लुटाता हूँ उन लोगों पर
दुनियाँ में जिनका कुछ आधार नहीं
मैं आँख मिलाता हूँ उन आँखों से
जिनका कोई भी पहरेदार नहीं

आँखों की भाषा तो अनगिन हैं
जो भी सुन्दर हो वह समझा देना।

पूजा करता हूँ उस कमजोरी की
जो जीने को मजबूर कर रही है।
मन ऊब रहा है अब इस दुनिया से
जो मुझको तुमसे दूर कर रही है

दूरी का दुख बढ़ता जाता है
जो भी तुमसे घट जाए घटा लेना

कहत है मुझ से उड़ता हुआ धुँआ
रुकने का नाम न ले तू चलता जा
संकेत कर रहा है नभ वाला घन
प्यासे प्राणों पर मुझ सा गलता जा

पर मैं प्यासा हूँ मरूस्थल सा
यह बात समंदर को समझा देना

चाँदनी चढ़ाता हूँ उन चरणों पर
जो अपनी राहें आप बनाते हैं
आवाज लगाता हूँ उन गीतों को
जिनको मधुवन में भौरि गाते हैं

मधुवन में सोये गीत हजारों है
जो भी तुमसे जग जाए जगा लेना



सांझ फागुन की

फिर कहीं मधुमास की पदचाप सुन,
डाल मेंहदी की लजीली हो गई।

दूर तक अमराइयों, वनबीथियों में
लगी संदल हवा चुपके पांव रखने,
रात-दिन फिर कान आहट पर लगाए
लगा महुआ गंध की बोली परखने

दिवस मादक होश खोए लग रहे,
सांझ फागुन की नशीली हो गई।

हंसी शाखों पर कुंआरी मंजरी
फिर कहीं टेसू के सुलगे अंग-अंग,
लौट कर परदेश से चुपचाप फिर,
बस गया कुसुमी लताओं पर अनंग

चुप खड़ी सरसों की गोरी सी हथेली
डूब कर हल्दी में पीली हो गई।

फिर उड़ी रह-रह के आंगन में अबीर
फिर झड़े दहलीज पर मादक गुलाल,
छोड़ चन्दन-वन चली सपनों के गांव
गंध कुंकुम के गले में बांह डाल

और होने के लिए रंगों से लथपथ
रेशमी चूनर हठीली हो गई।

- रामानुज त्रिपाठी



एक भी आँसू न कर बेकार

एक भी आँसू न कर बेकार -

जाने कब समंदर मांगने आ जाए!

पास प्यासे के कुआँ आता नहीं है,
यह कहावत है, अमरवाणी नहीं है,
और जिस के पास देने को न कुछ भी
एक भी ऐसा यहाँ प्राणी नहीं है,

कर स्वयं हर गीत का श्रृंगार

जाने देवता को कौनसा भा जाय!

चोट खाकर टूटते हैं सिर्फ दर्पण
किन्तु आकृतियाँ कभी टूटी नहीं हैं,
आदमी से रूठ जाता है सभी कुछ -
पर समस्यायें कभी रूठी नहीं हैं,

हर छलकते अश्रु को कर प्यार -

जाने आत्मा को कौन सा नहला जाय!

व्यर्थ है करना खुशामद रास्तों की,
काम अपने पाँव ही आते सफर में,
वह न ईश्वर के उठाए भी उठेगा -
जो स्वयं गिर जाय अपनी ही नज़र में,

हर लहर का कर प्रणय स्वीकार -

जाने कौन तट के पास पहुँचा जाए!

- रामावतार त्यागी



आग की भीख

धुँधली हुई दिशाएँ, छाने लगा कुहासा,
कुचली हुई शिखा से आने लगा धुआँसा।
कोई मुझे बता दे, क्या आज हो रहा है,
मुंह को छिपा तिमिर में क्यों तेज सो रहा है?
दाता पुकार मेरी, संदीप्ति को जिला दे,
बुझती हुई शिखा को संजीवनी पिला दे।
प्यारे स्वदेश के हित अँगार माँगता हूँ।
चढ़ती जवानियों का श्रृंगार माँगता हूँ।

बेचैन हैं हवाएँ, सब ओर बेकली है,
कोई नहीं बताता, किशती किधर चली है?
मँझदार है, भँवर है या पास है किनारा?
यह नाश आ रहा है या सौभाग्य का सितारा?
आकाश पर अनल से लिख दे अदृष्ट मेरा,
भगवान, इस तरी को भरमा न दे अँधेरा।
तमवेधिनी किरण का संधान माँगता हूँ।
ध्रुव की कठिन घड़ी में, पहचान माँगता हूँ।

आगे पहाड़ को पा धारा रुकी हुई है,
बलपुंज केसरी की ग्रीवा झुकी हुई है,
अग्निस्फुलिंग रज का, बुझ डेर हो रहा है,
है रो रही जवानी, अँधेर हो रहा है!
निर्वाक है हिमालय, गंगा डरी हुई है,
निस्तब्धता निशा की दिन में भरी हुई है।
पंचास्यनाद भीषण, विकराल माँगता हूँ।
जड़ताविनाश को फिर भूचाल माँगता हूँ।

मन की बंधी उमंगें असहाय जल रही है,
अरमानआरजू की लाशें निकल रही हैं।
भीगीखुशी पलों में रातें गुज़ारते हैं,
सोती वसुन्धरा जब तुझको पुकारते हैं,
इनके लिये कहीं से निर्भीक तेज ला दे,

पिघले हुए अनल का इनको अमृत पिला दे।
उन्माद, बेकली का उत्थान माँगता हूँ।
विस्फोट माँगता हूँ, तूफान माँगता हूँ।

आँसूभरे दृश्यों में चिनगारियाँ सजा दे,
मेरे शमशान में आ श्रंगी जरा बजा दे।
फिर एक तीर सीनों के आरपार कर दे,
हिमशीत प्राण में फिर अंगार स्वच्छ भर दे।
आमर्ष को जगाने वाली शिखा नयी दे,
अनुभूतियाँ हृदय में दाता, अनलमयी दे।
विष का सदा लहू में संचार माँगता हूँ।
बेचैन ज़िन्दगी का मैं प्यार माँगता हूँ।

ठहरी हुई तरी को ठोकर लगा चला दे,
जो राह हो हमारी उसपर दिया जला दे।
गति में प्रभंजनों का आवेग फिर सबल दे,
इस जाँच की घड़ी में निष्ठा कड़ी, अचल दे।
हम दे चुके लहु हैं, तू देवता विभा दे,
अपने अनलविशिख से आकाश जगमगा दे।
प्यारे स्वदेश के हित वरदान माँगता हूँ।
तेरी दया विपद् में भगवान माँगता हूँ।

- दिनकर



बालिका से वधु

माथे में सेंदूर पर छोटी दो बिंदी चमचम-सी,
पपनी पर आँसू की बूँदें मोती-सी, शबनम-सी।
लदी हुई कलियों में मादक टहनी एक नरम-सी,
यौवन की विनती-सी भोली, गुमसुम खड़ी शरम-सी।

पीला चीर, कोर में जिसकी चकमक गोटा-जाली,
चली पिया के गांव उमर के सोलह फूलोंवाली।
पी चुपके आनंद, उदासी भरे सजल चितवन में,
आँसू में भीगी माया चुपचाप खड़ी आंगन में।

आँखों में दे आँख हेरती हैं उसको जब सखियाँ,
मुस्की आ जाती मुख पर, हँस देती रोती अँखियाँ।
पर, समेट लेती शरमाकर बिखरी-सी मुस्कान,
मिट्टी उकसाने लगती है अपराधिनी-समान।

भींग रहा मीठी उमंग से दिल का कोना-कोना,
भीतर-भीतर हँसी देख लो, बाहर-बाहर रोना।
तू वह, जो झुरमुट पर आयी हँसती कनक-कली-सी,
तू वह, जो फूटी शराब की निर्झरिणी पतली-सी।

तू वह, रचकर जिसे प्रकृति ने अपना किया सिंगार,
तू वह जो धूसर में आयी सुबज रंग की धारा।
मां की ढीठ दुलार! पिता की ओ लजवंती भोली,
ले जायेगी हिय की मणि को अभी पिया की डोली।

कहो, कौन होगी इस घर तब शीतल उजियारी?
किसे देख हँस-हँस कर फूलेगी सरसों की क्यारी?
वृक्ष रीझ कर किसे करेंगे पहला फल अर्पण-सा?
झुकते किसको देख पोखरा चमकेगा दर्पण-सा?

किसके बाल ओज भर देंगे खुलकर मंद पवन में?

पड़ जायेगी जान देखकर किसको चंद्र-किरण में?
महँ-महँ कर मंजरी गले से मिल किसको चूमेगी?
कौन खेत में खड़ी फ़सल की देवी-सी झूमेगी?

बनी फिरेगी कौन बोलती प्रतिमा हरियाली की?
कौन रूह होगी इस धरती फल-फूलों वाली की?
हँसकर हृदय पहन लेता जब कठिन प्रेम-ज़ंजीर,
खुलकर तब बजते न सुहागिन, पाँवों के मंजीरा।

घड़ी गिनी जाती तब निशिदिन उँगली की पोरों पर,
प्रिय की याद झूलती है साँसों के हिंडोरों पर।
पलती है दिल का रस पीकर सबसे प्यारी पीर,
बनती है बिगड़ती रहती पुतली में तस्वीर।

पड़ जाता चस्का जब मोहक प्रेम-सुधा पीने का,
सारा स्वाद बदल जाता है दुनिया में जीने का।
मंगलमय हो पंथ सुहागिन, यह मेरा वरदान;
हरसिंगार की टहनी-से फूलें तेरे अरमान।

जगे हृदय को शीतल करनेवाली मीठी पीर,
निज को डुबो सके निज में, मन हो इतना गंभीर।
छाया करती रहे सदा तुझको सुहाग की छाँह,
सुख-दुख में ग्रीवा के नीचे हो प्रियतम की बाँह।

पल-पल मंगल-लग्न, ज़िंदगी के दिन-दिन त्यौहार,
उर का प्रेम फूटकर हो आँचल में उजली धाराकुंजी

घेरे था मुझे तुम्हारी साँसों का पवन,
जब मैं बालक अबोध अनजान था।

यह पवन तुम्हारी साँस का
सौरभ लाता था।
उसके कंधों पर चढ़ा
मैं जाने कहाँ-कहाँ

आकाश में घूम आता था।

सृष्टि शायद तब भी रहस्य थी।
मगर कोई परी मेरे साथ में थी;
मुझे मालूम तो न था,
मगर ताले की कुंजी मेरे हाथ में थी।

जवान हो कर मैं आदमी न रहा,
खेत की घास हो गया।

तुम्हारा पवन आज भी आता है
और घास के साथ अठखेलियाँ करता है,
उसके कानों में चुपके चुपके
कोई संदेश भरता है।

घास उड़ना चाहती है
और अकुलाती है,
मगर उसकी जड़ें धरती में
बेतरह गड़ी हुई हैं।
इसलिए हवा के साथ
वह उड़ नहीं पाती है।

शक्ति जो चेतन थी,
अब जड़ हो गयी है।
बचपन में जो कुंजी मेरे पास थी,
उम्र बढ़ते बढ़ते
वह कहीं खो गयी है।

- दिनकर



लेन-देन

लेन-देन का हिसाब
लंबा और पुराना है।

जिनका कर्ज हमने खाया था,
उनका बाकी हम चुकाने आये हैं।
और जिन्होंने हमारा कर्ज खाया था,
उनसे हम अपना हक पाने आये हैं।

लेन-देन का व्यापार अभी लंबा चलेगा।
जीवन अभी कई बार पैदा होगा
और कई बार जलेगा।

और लेन-देन का सारा व्यापार
जब चुक जायेगा,
ईश्वर हमसे खुद कहेगा -

तुम्हारे एक पावना मुझ पर भी है,
आओ, उसे ग्रहण करो।
अपना रूप छोड़ो,
मेरा स्वरूप वरण करो।

- दिनकर



रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद

रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद,
आदमी भी क्या अनोखा जीव है!
उलझनें अपनी बनाकर आप ही फँसता,
और फिर बेचैन हो जगता, न सोता है।

जानता है तू कि मैं कितना पुराना हूँ?
मैं चुका हूँ देख मनु को जनमते-मरते
और लाखों बार तुझ-से पागलों को भी
चाँदनी में बैठ स्वप्नों पर सही करते।

आदमी का स्वप्न? है वह बुलबुला जल का
आज उठता और कल फिर फूट जाता है
किन्तु, फिर भी धन्य ठहरा आदमी ही तो?
बुलबुलों से खेलता, कविता बनाता है।

मैं न बोला किन्तु मेरी रागिनी बोली,
देख फिर से चाँद! मुझको जानता है तू?
स्वप्न मेरे बुलबुले हैं? है यही पानी?
आग को भी क्या नहीं पहचानता है तू?

मैं न वह जो स्वप्न पर केवल सही करते,
आग में उसको गला लोहा बनाता हूँ,
और उस पर नींव रखता हूँ नये घर की,
इस तरह दीवार फौलादी उठाता हूँ।

मनु नहीं, मनु-पुत्र है यह सामने, जिसकी
कल्पना की जीभ में भी धार होती है,
वाण ही होते विचारों के नहीं केवल,
स्वप्न के भी हाथ में तलवार होती है।

स्वर्ग के सम्राट को जाकर खबर कर दे-

रोज ही आकाश चढते जा रहे हैं वे,
रोकिये, जैसे बने इन स्वप्नवालों को,
स्वर्ग की ही ओर बढ़ते आ रहे हैं वे।

- दिनकर



- दिनकर



जब नींद नहीं आती होगी!

क्या तुम भी सुधि से थके प्राण ले-लेकर अकुलाती होगी!

जब नींद नहीं आती होगी!

दिनभर के कार्य-भार से थक जाता होगा जूही-सा तन,
श्रम से कुम्हला जाता होगा मृदु कोकाबेली-सा आनन।
लेकर तन-मन की श्रान्ति पड़ी होगी जब शय्या पर चंचल,
किस मर्म-वेदना से क्रंदन करता होगा प्रति रोम विकल
आँखों के अम्बर से धीरे-से ओस टुलक जाती होगी!

जब नींद नहीं आती होगी!

जैसे घर में दीपक न जले ले वैसा अंधकार तन में,
अमराई में बोले न पिकी ले वैसा सूनापन मन में,
साथी की डूब रही नौका जो खड़ा देखता हो तट पर -
उसकी-सी लिये विवशता तुम रह-रह जलती होगी कातर।
तुम जाग रही होगी पर जैसे दुनिया सो जाती होगी!

जब नींद नहीं आती होगी!

हो छलक उठी निर्जन में काली रात अवश ज्यों अनजाने,
छाया होगा वैसा ही भयकारी उजड़ापन सिरहाने,
जीवन का सपना टूट गया - छूटा अरमानों का सहचर,
अब शेष नहीं होगी प्राणों की क्षुब्ध रुलाई जीवन भर!
क्यों सोच यही तुम चिंताकुल अपने से भय खाती होगी?

जब नींद नहीं आती होगी!

- रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'



आत्म-समर्पण

सजल जीवन की सिहरती धार पर,
लहर बनकर यदि बहो, तो ले चलो।
यह न मुझसे पूछना, मैं किस दिशा से आ रहा हूँ,
है कहाँ वह चरणरेखा, जो कि धोने जा रहा हूँ,
पत्थरों की चोट जब उर पर लगे,
एक ही "कलकल" कहो, तो ले चलो।

सजल जीवन की सिहरती धार पर,
लहर बनकर यदि बहो, तो ले चलो।
मार्ग में तुमको मिलेंगे वात के प्रतिकूल झोंके,
दृढ़ शिला के खण्ड होंगे दानवों से राह रोके,
यदि प्रपातों के भयानक तुमुल में,
भूल कर भी भय न हो, तो ले चलो।

सजल जीवन की सिहरती धार पर,
लहर बनकर यदि बहो, तो ले चलो।
हो रहीं धूमिल दिशाएँ, नींद जैसे जागती है,
बादलों की राशि मानो मुँह बनाकर भागती है,
इस बदलती प्रकृति के प्रतिबिम्ब को,
मुस्कुराकर यदि सहो, तो ले चलो।

सजल जीवन की सिहरती धार पर,
लहर बनकर यदि बहो, तो ले चलो।
मार्ग से परिचय नहीं है, किन्तु परिचित शक्ति तो है,
दूर हो आराध्य चाहे, प्राण में अनुरक्ति तो है,
इन सुनहली इंद्रियों को प्रेम की,
अग्नि से यदि तुम दहो, तो ले चलो।

सजल जीवन की सिहरती धार पर,
लहर बनकर यदि बहो, तो ले चलो।
वह तरलता है हृदय में, किरण को भी लौ बना दूँ,
झाँक ले यदि एक तारा, तो उसे मैं सौ बना दूँ,
इस तरलता के तरंगित प्राण में -
प्राण बनकर यदि रहो, तो ले चलो।

सजल जीवन की सिहरती धार पर,
लहर बनकर यदि बहो, तो ले चलूँ।

- रामकुमार वर्मा



ये गजरे तारों वाले

इस सोते संसार बीच,
जग कर सज कर रजनी बाले!
कहाँ बेचने ले जाती हो,
ये गजरे तारों वाले?
मोल करेगा कौन,
सो रही हैं उत्सुक आँखें सारी।
मत कुम्हलाने दो,
सूनेपन में अपनी निधियाँ न्यारी॥
निर्झर के निर्मल जल में,
ये गजरे हिला हिला धोना।
लहर हहर कर यदि चूमे तो,
किंचित् विचलित मत होना॥
होने दो प्रतिबिम्ब विचुम्बित,
लहरों ही में लहराना।
'लो मेरे तारों के गजरे'
निर्झर-स्वर में यह गाना॥
यदि प्रभात तक कोई आकर,
तुम से हाय! न मोल करे।
तो फूलों पर ओस-रूप में
बिखरा देना सब गजरे॥

- रामकुमार वर्मा



अन्वेषण

मैं ढूँढता तुझे था, जब कुंज और वन में।
तू खोजता मुझे था, तब दीन के सदन में॥
तू 'आह' बन किसी की, मुझको पुकारता था।
मैं था तुझे बुलाता, संगीत में भजन में॥
मेरे लिए खड़ा था, दुखियों के द्वार पर तू।
मैं बाट जोहता था, तेरी किसी चमन में॥
बनकर किसी के आँसू, मेरे लिए बहा तू।
आँखे लगी थी मेरी, तब मान और धन में॥
बाजे बजाबजा कर, मैं था तुझे रिझाता।
तब तू लगा हुआ था, पतितों के संगठन में॥
मैं था विरक्त तुझसे, जग की अनित्यता पर।
उत्थान भर रहा था, तब तू किसी पतन में॥
बेबस गिरे हुआओं के, तू बीच में खड़ा था।
मैं स्वर्ग देखता था, झुकता कहाँ चरन में॥
तूने दिया अनेकों अवसर न मिल सका मैं।
तू कर्म में मगन था, मैं व्यस्त था कथन में॥
तेरा पता सिकंदर को, मैं समझ रहा था।
पर तू बसा हुआ था, फरहाद कोहकन में॥
क्रीसस की 'हाय' में था, करता विनोद तू ही।
तू अंत में हंसा था, महमुद के रुदन में॥
प्रह्लाद जानता था, तेरा सही ठिकाना।
तू ही मचल रहा था, मंसूर की रटन में॥
आखिर चमक पड़ा तू गाँधी की हड्डियों में।
मैं था तुझे समझता, सुहराब पीले तन में।
कैसे तुझे मिलूँगा, जब भेद इस कदर है।
हैरान होके भगवन, आया हूँ मैं सरन में॥
तू रूप कै किरन में सौंदर्य है सुमन में।
तू प्राण है पवन में, विस्तार है गगन में॥
तू ज्ञान हिन्दुओं में, ईमान मुस्लिमों में।
तू प्रेम क्रिश्चियन में, तू सत्य है सुजन में॥

हे दीनबंधु ऐसी, प्रतिभा प्रदान कर तू।
देखूँ तुझे दृगों में, मन में तथा वचन में॥
कठिनाइयों दुखों का, इतिहास ही सुयश है।
मुझको समर्थ कर तू, बस कष्ट के सहन में॥
दुख में न हार मानूँ, सुख में तुझे न भूलूँ।
ऐसा प्रभाव भर दे, मेरे अधीर मन में॥

- रामनरेश त्रिपाठी



फसाना

रहो अपने दिल में
उड़ो आसमां तक
जमीं से आसमां तक
तेरा फसाना होगा

न जाने क्यूँ
न उड़ता हूँ मैं
न रहता हूँ दिल में
फिर भी
हसरत है कि
फसाना बन जाऊँ

फसाने बहुत हुए
सदियों से
कुछ तुफां
से आये
और बिखर गये
कुछ हलचलें
दिखातीं हैं
सतहों पर
न जाने किस
दबे तुफां की
तसवीर हैं ये

दिलों, आसमां औ जमीं
की तारीख
इन फसानों
में सिमटी
बिखरी है

कुछ बनने की
ख्वाहिश
कुछ गढ़ने
की ज़रूरत

मैं एक फसाना हूँ
एक कशिश
एक धड़कन
हूँ दिल की

जिसकी आवाज
सदियों से
चंद फसानों में
निरंतर
कल कल
नदी के नाद
सी
थिरकती आयी
है।

- रणजीत कुमार मुरारका



कल

कल कहाँ किसने कहा
देखा सुना है
फिर भी मैं कल के लिए
जीता रहा हूँ।

आज को भूले शंका सोच
भय से कांपता
कल के सपने संजोता रहा हूँ।

फिर भी न पाया कल को
और
कल के स्वप्न को
जो कुछ था मेरे हाथ
आज
वही है आधार मेरा
कल के सपने संजोना
है निराधार मेरा

यदि सीख पाऊँ
मैं जीना आज
आज के लिए
तो कल का
स्वप्न साकार होगा
जीवन मरण का भेद
निस्सार होगा
जो कल था वही है आज
जो आज है वही कल होगा
मैं कल कल नदी के नाद
सा बहता रहा हूँ।

- रणजीत कुमार मुरारका



चांद मद्धम है

चांद मद्धम है, आसमां चुप है।
नींद की गोद में जहां चुप है।

दूर वादी पे दूधिया बादल
झुक के पर्वत को प्यार करते हैं।
दिल में नाकाम हसरतें लेकर,
हम तेरा इन्तज़ार करते हैं।

इन बहारों के साये में आ जा
फिर मोहब्बत जवां रहे न रहे।
ज़िन्दगी तेरे नामुरादों पर
कल तलक मेहरबां रहे न रहे।

रोज की तरह आज भी तारे
सुबह की गर्द में न सो जायें।
आ तेरे ग्राम में जागती आंखें
कम से कम एक रात सो जायें।

चांद मद्धम है, आसमां चुप है।
नींद की गोद में जहां चुप है।

- साहिर लुधियानवी



उदास न हो

मेरे नदीम मेरे हमसफर, उदास न हो।
कठिन सही तेरी मंज़िल, मगर उदास न हो।

कदम कदम पे चट्टानें खड़ी रहें, लेकिन
जो चल निकलते हैं दरिया तो फिर नहीं रुकते।
हवाएँ कितना भी टकराएँ आंधियाँ बनकर,
मगर घटाओं के परछम कभी नहीं झुकते।
मेरे नदीम मेरे हमसफर

हर एक तलाश के रास्ते में मुश्किलें हैं, मगर
हर एक तलाश मुरादों के रंग लाती है।
हज़ारों चांद सितारों का खून होता है
तब एक सुबह फिज़ाओं पे मुस्कुराती है।
मेरे नदीम मेरे हमसफर

जो अपने खून को पानी बना नहीं सकते
वो ज़िन्दगी में नया रंग ला नहीं सकते।
जो रास्ते के अन्धेरो से हार जाते हैं
वो मंज़िलों के उजालों को पा नहीं सकते।

मेरे नदीम मेरे हमसफर, उदास न हो।
कठिन सही तेरी मंज़िल, मगर उदास न हो।

- साहिर लुधियानवी



अँधेरे का मुसाफ़िर

यह सिमटती साँझ,
यह वीरान जंगल का सिरा,
यह बिखरती रात, यह चारों तरफ सहमी धरा;
उस पहाड़ी पर पहुँचकर रोशनी पथरा गयी,
आखिरी आवाज़ पंखों की किसी के आ गयी,
रुक गयी अब तो अचानक लहर की अँगाड़ाइयाँ,
ताल के खामोश जल पर सो गई परछाइयाँ।
दूर पेड़ों की कतारें एक ही में मिल गयीं,
एक धब्बा रह गया, जैसे ज़मीनें हिल गयीं,
आसमाँ तक टूटकर जैसे धरा पर गिर गया,
बस धुँए के बादलों से सामने पथ घिर गया,
यह अँधेरे की पिटारी, रास्ता यह साँप-सा,
खोलनेवाला अनाड़ी मन रहा है काँप-सा।
लड़खड़ाने लग गया मैं, डगमगाने लग गया,
देहरी का दीप तेरा याद आने लग गया;
थाम ले कोई किरन की बाँह मुझको थाम ले,
नाम ले कोई कहीं से रोशनी का नाम ले,
कोई कह दे, "दूर देखो टिमटिमाया दीप एक,
ओ अँधेरे के मुसाफ़िर उसके आगे घुटने टेक!"

- सर्वेश्वरदयाल सकसेना



तुम्हारे साथ रहकर

तुम्हारे साथ रहकर
अक्सर मुझे ऐसा महसूस हुआ है
कि दिशाएँ पास आ गयी हैं,
हर रास्ता छोटा हो गया है,
दुनिया सिमटकर
एक आँगन-सी बन गयी है
जो खचाखच भरा है,
कहीं भी एकान्त नहीं
न बाहर, न भीतर।

हर चीज़ का आकार घट गया है,
पेड़ इतने छोटे हो गये हैं
कि मैं उनके शीश पर हाथ रख
आशीष दे सकता हूँ,
आकाश छाती से टकराता है,
मैं जब चाहूँ बादलों में मुँह छिपा सकता हूँ।

तुम्हारे साथ रहकर
अक्सर मुझे महसूस हुआ है
कि हर बात का एक मतलब होता है,
यहाँ तक की घास के हिलने का भी,
हवा का खिड़की से आने का,
और धूप का दीवार पर
चढ़कर चले जाने का।

तुम्हारे साथ रहकर
अक्सर मुझे लगा है
कि हम असमर्थताओं से नहीं
सम्भावनाओं से घिरे हैं,
हर दिवार में द्वार बन सकता है

और हर द्वार से पूरा का पूरा
पहाड़ गुजर सकता है।

शक्ति अगर सीमित है
तो हर चीज़ अशक्त भी है,
भुजाएँ अगर छोटी हैं,
तो सागर भी सिमटा हुआ है,
सामर्थ्य केवल इच्छा का दूसरा नाम है,
जीवन और मृत्यु के बीच जो भूमि है
वह नियति की नहीं मेरी है।

- सर्वेश्वरदयाल सकसेना



जीकर देख लिया

जीकर देख लिया
जीने में -
कितना मरना पड़ता है।
अपनी शर्तों पर जीने की
एक चाह सबमें रहती है।
किन्तु जिन्दगी अनुबन्धों के
अनचाहे आश्रय गहती है।
क्या क्या कहना
क्या क्या सुनना
क्या क्या करना पड़ता है
समझौतों की सुझियां मिलती,
धन के धागे भी मिल जाते,
सम्बन्धों के फटे वस्त्र तो
सिलने को हैं, सिल भी जाते,
सीवन
कौन, कहाँ कब उधड़े,
इतना डरना पड़ता है।
मेरी कौन विसात यहाँ तो
सन्न्यासी भी सांसत ढोते।
लाख अपरिग्रह के दर्पण हो
संग्रह के प्रतिबिम्ब संजोते,
कुटिया में
कोपीन कमण्डल
कुछ तो धरना पड़ता है।

- शिव बहादुर सिंह भदौरिया



आभार

जिस-जिस से पथ पर स्नेह मिला, उस-उस राही को धन्यवाद।

जीवन अस्थिर अनजाने ही, हो जाता पथ पर मेल कहीं,
सीमित पग डग, लम्बी मंजिल, तय कर लेना कुछ खेल नहीं।
दाएँ-बाएँ सुख-दुख चलते, सम्मुख चलता पथ का प्रसाद --
जिस-जिस से पथ पर स्नेह मिला, उस-उस राही को धन्यवाद।

साँसों पर अवलम्बित काया, जब चलते-चलते चूर हुई,
दो स्नेह-शब्द मिल गये, मिली नव स्फूर्ति, थकावट दूर हुई।
पथ के पहचाने छूट गये, पर साथ-साथ चल रही याद --
जिस-जिस से पथ पर स्नेह मिला, उस-उस राही को धन्यवाद।

जो साथ न मेरा दे पाये, उनसे कब सूनी हुई डगर?
मैं भी न चलूँ यदि तो क्या, राही मर लेकिन राह अमर।
इस पथ पर वे ही चलते हैं, जो चलने का पा गये स्वाद --
जिस-जिस से पथ पर स्नेह मिला, उस-उस राही को धन्यवाद।

कैसे चल पाता यदि न मिला होता मुझको आकुल अंतर?
कैसे चल पाता यदि मिलते, चिर-तृप्ति अमरता-पूर्ण प्रहर!
आभारी हूँ मैं उन सबका, दे गये व्यथा का जो प्रसाद --
जिस-जिस से पथ पर स्नेह मिला, उस-उस राही को धन्यवाद।

- सुमन



विवशता

मैं नहीं आया तुम्हारे द्वार
पथ ही मुड़ गया था।

गति मिलि मैं चल पड़ा
पथ पर कहीं रुकना मना था,
राह अनदेखी, अजाना देश
संगी अनसुना था।
चाँद सूरज की तरह चलता
न जाना रातदिन है,
किस तरह हम तुम गए मिल
आज भी कहना कठिन है,
तन न आया माँगने अभिसार
मन ही जुड़ गया था।

देख मेरे पंख चल, गतिमय
लता भी लहलहाई
पत्र आँचल में छिपाए मुख
कली भी मुस्कुराई।
एक क्षण को थम गए डैने
समझ विश्राम का पल
पर प्रबल संघर्ष बनकर
आ गई आँधी सदलबल।
डाल झूमी, पर न टूटी
किंतु पंछी उड़ गया था।

- शिव मंगल सिंह 'सुमन'



क्षुद्र की महिमा

शुद्ध सोना क्यों बनाया, प्रभु, मुझे तुमने,
कुछ मिलावट चाहिए गलहार होने के लिए।
जो मिला तुममें भला क्या
भिन्नता का स्वाद जाने,
जो नियम में बंध गया
वह क्या भला अपवाद जाने!

जो रहा समकक्ष, करुणा की मिली कब छांह उसको
कुछ गिरावट चाहिए, उद्धार होने के लिए।
जो अजन्मा है, उन्हें इस
इंद्रधनुषी विश्व से संबंध क्या!
जो न पीडा झेल पाये स्वयं,
दूसरों के लिए उनको द्वंद्व क्या!

एक स्रष्टा शून्य को श्रृंगार सकता है
मोह कुछ तो चाहिए, साकार होने के लिए!
क्या निदाघ नहीं प्रलासी बादलों से
खींच सावन धार लाता है!
निर्झरों के पत्थरों पर गीत लिक्खे
क्या नहीं फेनिल, मधुर संघर्ष गाता है!

है अभाव जहाँ, वहीं है भाव दुर्लभ -
कुछ विकर्षण चाहिए ही, प्यार होने के लिए!
वाद्य यंत्र न दृष्टि पथ, पर हो,
मधुर झंकार लगती और भी!
विरह के मधुवन सरीखे दीखते
हैं क्षणिक सहवास वाले ठौर भी!

साथ रहने पर नहीं होती सही पहचान!
चाहिए दूरी तनिक, अधिकार होने के लिए!

- श्यामनंदन किशोर



एक फूल की चाह

उद्वेलित कर अश्रु-राशियाँ,
हृदय-चिताएँ धधकाकर,
महा महामारी प्रचण्ड हो
फैल रही थी इधर उधर।
क्षीण-कण्ठ मृतवत्साओं का
करुण-रुदन दुर्दान्त नितान्त,
भरे हुए था निज कृश रव में
हाहाकार अपार अशान्त।
बहुत रोकता था सुखिया को
'न जा खेलने को बाहर',
नहीं खेलना रुकता उसका
नहीं ठहरती वह पल भर।
मेरा हृदय काँप उठता था,
बाहर गई निहार उसे;
यही मानता था कि बचा लूँ
किसी भांति इस बार उसे।
भीतर जो डर रहा छिपाये,
हाय! वही बाहर आया।
एक दिवस सुखिया के तनु को
ताप-तप्त मैंने पाया।
ज्वर से विह्वल हो बोली वह,
क्या जानूँ किस डर से डर -
मुझको देवी के प्रसाद का
एक फूल ही दो लाकर।

बेटी, बतला तो तू मुझको
किसने तुझे बताया यह;
किसके द्वारा, कैसे तूने
भाव अचानक पाया यह?
मैं अछूत हूँ, मुझे कौन हा!

मन्दिर में जाने देगा;
देवी का प्रसाद ही मुझको
कौन यहाँ लाने देगा?
बार बार, फिर फिर, तेरा हठ!
पूरा इसे करूँ कैसे;
किससे कहे कौन बतलावे,
धीरज हाय! धरूँ कैसे?
कोमल कुसुम समान देह हा!
हुई तप्त अंगार-मयी;
प्रति पल बढ़ती ही जाती है
विपुल वेदना, व्यथा नई।
मैंने कई फूल ला लाकर
रक्खे उसकी खटिया पर;
सोचा - शान्त करूँ मैं उसको,
किसी तरह तो बहला कर।
तोड़-मोड़ वे फूल फेंक सब
बोल उठी वह चिल्ला कर -
मुझको देवी के प्रसाद का
एक फूल ही दो लाकर!

क्रमशः कण्ठ क्षीण हो आया,
शिथिल हुए अवयव सारे,
बैठा था नव-नव उपाय की
चिन्ता में मैं मनमारे।
जान सका न प्रभात सजग से
हुई अलस कब दोपहरी,
स्वर्ण-घनों में कब रवि डूबा,
कब आई सन्ध्या गहरी।
सभी ओर दिखलाई दी बस,
अन्धकार की छाया गहरी।
छोटी-सी बच्ची को ग्रसने
कितना बड़ा तिमिर आया!

ऊपर विस्तृत महाकाश में
जलते-से अंगारों से,
झुलसी-सी जाती थी आँखें
जगमग जगते तारों से।
देख रहा था - जो सुस्थिर हो
नहीं बैठती थी क्षण भर,
हाय! बही चुपचाप पड़ी थी
अटल शान्ति-सी धारण कर।
सुनना वही चाहता था मैं
उसे स्वयं ही उकसा कर -
मुझको देवी के प्रसाद का
एक फूल ही दो लाकर!

हे मातः, हे शिवे, अम्बिके,
तप्त ताप यह शान्त करो;
निरपराध छोटी बच्ची यह,
हाय! न मुझसे इसे हरो!
काली कान्ति पड़ गई इसकी,
हँसी न जाने गई कहाँ,
अटक रहे हैं प्राण क्षीण तर
साँसों में ही हाय यहाँ!
अरी निष्ठुरे, बढी हुई ही
है यदि तेरी तृषा नितान्त,
तो कर ले तू उसे इसी क्षण
मेरे इस जीवन से शान्त!
मैं अछूत हूँ तो क्या मेरी
विनती भी है हाय! अपूत,
उससे भी क्या लग जावेगी
तेरे श्री-मन्दिर को छूत?
किसे ज्ञात, मेरी विनती वह
पहुँची अथवा नहीं वहाँ,
उस अपार सागर का दीखा

पार न मुझको कहीं वहाँ।
अरी रात, क्या अक्षयता का
पट्टा लेकर आई तू,
आकर अखिल विश्व के ऊपर
प्रलय-घटा सी छाई तू!
पग भर भी न बढ़ी आगे तू
डट कर बैठ गई ऐसी,
क्या न अरुण-आभा जागेगी,
सहसा आज विकृति कैसी!
युग के युग-से बीत गये हैं,
तू ज्यों की त्यों है लेटी,
पड़ी एक करवट कब से तू,
बोल, बोल, कुछ तो बेटी!
वह चुप थी, पर गूँज रही थी
उसकी गिरा गगन-भर भर -
'मुझको देवी के प्रसाद का -
एक फूल तुम दो लाकर!'

"कुछ हो देवी के प्रसाद का
एक फूल तो लाऊँगा;
हो तो प्रातःकाल, शीघ्र ही
मन्दिर को मैं जाऊँगा।
तुझ पर देवी की छाया है
और इष्ट है यही तुझे;
देखूँ देवी के मन्दिर में
रोक सकेगा कौन मुझे।"
मेरे इस निश्चल निश्चय ने
झट-से हृदय किया हलका;
ऊपर देखा - अरुण राग से
रंजित भाल नभस्थल का!
झड़-सी गई तारकावलि थी
म्लान और निष्प्रभ होकर;

निकल पड़े थे खग नीड़ों से
मानों सुध-बुध सी खो कर।
रस्सी डोल हाथ में लेकर
निकट कुएँ पर जा जल खींच,
मैंने स्नान किया शीतल हो,
सलिल-सुधा से तनु को सींच।
उज्वल वस्त्र पहन घर आकर
अशुचि ग्लानि सब धो डाली।
चन्दन-पुष्प-कपूर-धूप से
सजली पूजा की थाली।
सुकिया के सिरहाने जाकर
मैं धीरे से खड़ा हुआ।
आँखें झँपी हुई थीं, मुख भी
मुरझा-सा था पड़ा हुआ।
मैंने चाहा - उसे चुम लें,
किन्तु अशुचिता से डर कर
अपने वस्त्र सँभाल, सिकुड़कर
खड़ा रहा कुछ दूरी पर।
वह कुछ कुछ मुसकाई सहसा,
जाने किन स्वप्नों में लगन,
उसकी वह मुसकाहट भी हा!
कर न सकी मुझको मुद-मग्न।
अक्षम मुझे समझकर क्या तू
हँसी कर रही है मेरी?
बेटी, जाता हूँ मन्दिर में
आज्ञा यही समझ तेरी।
उसने नहीं कहा कुछ, मैं ही
बोल उठा तब धीरज धर -
तुझको देवी के प्रसाद का
एक फूल तो दूँ लाकर!

ऊँचे शैल-शिखर के ऊपर
मन्दिर था विस्तीर्ण विशाल;
स्वर्ण-कलश सरसिज विहसित थे
पाकर समुदित रवि-कर-जाल।
परिक्रमा-सी कर मन्दिर की,
ऊपर से आकर झर झर,
वहाँ एक झरना झरता था
कल कल मधुर गान कर कर।
पुष्प-हार-सा जँचता था वह
मन्दिर के श्री चरणों में,
त्रुटि न दिखती थी भीतर भी
पूजा के उपकरणों में।
दीप-दूध से आमोदित था
मन्दिर का आंगन सारा;
गूँज रही थी भीतर-बाहर
मुखरित उत्सव की धारा।
भक्त-वृन्द मृदु-मधुर कण्ठ से
गाते थे सभक्ति मुद-मय -
"पतित-तारिणि पाप-हारिणी,
माता, तेरी जय-जय-जय!"
"पतित-तारिणी, तेरी जय-जय" -
मेरे मुख से भी निकला,
बिना बटे ही मैं आगे को
जानें किस बल से टिकला!
माता, तू इतनी सुन्दर है,
नहीं जानता था मैं यह;
माँ के पास रोक बच्चों की,
कैसी विधी यह तू ही कह?
आज स्वयं अपने निदेश से
तूने मुझे बुलाया है;
तभी आज पापी अछूत यह

श्री-चरणों तक आया है।
मेरे दीप-फूल लेकर वे
अम्बा को अर्पित करके
दिया पुजारी ने प्रसाद जब
आगे को अंजलि भरके,
भूल गया उसका लेना झट,
परम लाभ-सा पाकर मैं।
सोचा - बेटा को माँ के ये
पुण्य-पुष्प दूँ जाकर मैं।

सिंह पौर तक भी आंगन से
नहीं पहुँचने मैं पाया,
सहसा यह सुन पड़ा कि - "कैसे
यह अछूत भीतर आया?
पकड़ो, देखो भाग न जावे,
बना धूर्त यह है कैसा;
साफ-स्वच्छ परिधान किये है,
भले मानुषों जैसा!
पापी ने मन्दिर में घुसकर
किया अनर्थ बड़ा भारी;
कुलपित कर दी है मन्दिर की
चिरकालिक शुचिता सारी।"
ए, क्या मेरा कलुष बड़ा है
देवी की गरिमा से भी;
किसी बात में हूँ मैं आगे
माता की महिमा से भी?
माँ के भक्त हुए तुम कैसे,
करके यह विचार खोटा
माँ से सम्मुख ही माँ का तुम
गौरव करते हो छोटा!
कुछ न सुना भक्तों ने, झट से
मुझे घेर कर पकड़ लिया;

मार मार कर मुक्के-घूँसे
धम-से नीचे गिरा दिया!
मेरे हाथों से प्रसाद भी
बिखर गया हा! सब का सब,
हाय! अभागी बेटी तुझ तक
कैसे पहुँच सके यह अब।
मैंने उनसे कहा - दण्ड दो
मुझे मार कर, ठुकरा कर,
बस यह एक फूल कोई भी
दो बच्ची को ले जाकर।

न्यायालय ले गये मुझे वे
सात दिवस का दण्ड-विधान
मुझको हुआ; हुआ था मुझसे
देवी का महान अपमान!
मैंने स्वीकृत किया दण्ड वह
शीश झुकाकर चुप ही रह;
उस असीम अभियोग, दोष का
क्या उत्तर देता; क्या कह?
सात रोज ही रहा जेल में
या कि वहाँ सदियाँ बीतीं,
अविस्त्रान्त बरसा करके भी
आँखें तनिक नहीं रीतीं।
कैदी कहते - "अरे मूर्ख, क्यों
ममता थी मन्दिर पर ही?
पास वहाँ मसजिद भी तो थी
दूर न था गिरिजाघर भी।"
कैसे उनको समझाता मैं,
वहाँ गया था क्या सुख से;
देवी का प्रसाद चाहा था
बेटी ने अपने मुख से।

दण्ड भोग कर जब मैं छूटा,
पैर न उठते थे घर को
पीछे ठेल रहा था कोई
भय-जर्जर तनु पंजर को।
पहले की-सी लेने मुझको
नहीं दौड़ कर आई वह;
उलझी हुई खेल में ही हा!
अबकी दी न दिखाई वह।
उसे देखने मरघट को ही
गया दौड़ता हुआ वहाँ -
मेरे परिचित बन्धु प्रथम ही
फूँक चुके थे उसे जहाँ।
बुझी पड़ी थी चिता वहाँ पर
छाती धधक उठी मेरी,
हाय! फूल-सी कोमल बच्ची
हुई राख की थी ढेरी!
अन्तिम बार गोद में बेटी,
तुझको ले न सका मैं हाय!
एक फूल माँ का प्रसाद भी
तुझको दे न सका मैं हा!
वह प्रसाद देकर ही तुझको
जेल न जा सकता था क्या?
तनिक ठहर ही सब जन्मों के
दण्ड न पा सकता था क्या?
बेटी की छोटी इच्छा वह
कहीं पूर्ण मैं कर देता
तो क्या अरे दैव, त्रिभुवन का
सभी विभव मैं हर लेता?
यहीं चिता पर धर दूँगा मैं,
- कोई अरे सुनो, वर दो -
मुझको देवी के प्रसाद का
एक फूल ही लाकर दो!

- सियाराम शरण गुप्त



युगावतार गांधी

(अंश)

चल पड़े जिधर दो डग, मग में, चल पड़े कोटि पग उसी ओर
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि, पड़ गये कोटि दग उसी ओर;
जिसके सिर पर निज धरा हाथ, उसके शिर-रक्षक कोटि हाथ
जिस पर निज मस्तक झुका दिया, झुक गये उसी पर कोटि माथ।

हे कोटिचरण, हे कोटिबाहु! हे कोटिरूप, हे कोटिनाम!
तुम एक मूर्ति, प्रतिमूर्ति कोटि! हे कोटि मूर्ति, तुमको प्रणाम!
युग बढ़ा तुम्हारी हँसी देख, युग हटा तुम्हारी भृकुटि देख;
तुम अचल मेखला बन भू की, खींचते काल पर अमिट रेखा।

तुम बोल उठे, युग बोल उठा, तुम मौन बने, युग मौन बना
कुछ कर्म तुम्हारे संचित कर, युग कर्म जगा, युगधर्म तना।
युग-परिवर्तक, युग-संस्थापक, युग संचालक, हे युगाधार!
युग-निर्माता, युग-मूर्ति! तुम्हें, युग-युग तक युग का नमस्कार!

तुम युग-युग की रूढ़ियाँ तोड़, रचते रहते नित नई सृष्टि
उठती नवजीवन की नीवें, ले नवचेतन की दिव्य दृष्टि।
धर्माडंबर के खंडहर पर, कर पद-प्रहार, कर धराध्वस्त
मानवता का पावन मंदिर, निर्माण कर रहे सृजनव्यस्त!

बढ़ते ही जाते दिग्विजयी, गढ़ते तुम अपना रामराज
आत्माहुति के मणिमाणिक से, मढ़ते जननी का स्वर्ण ताज!
तुम कालचक्र के रक्त सने, दशनों को कर से पकड़ सुदृढ़
मानव को दानव के मुँह से, ला रहे खींच बाहर बढ़-बढ़।

पिसती कराहती जगती के, प्राणों में भरते अभय दान
अधमरे देखते हैं तुमको, किसने आकर यह किया त्राण?
दृढ़ चरण, सुदृढ़ करसंपुट से, तुम कालचक्र की चाल रोक

नित महाकाल की छाती पर लिखते करुणा के पुण्य श्लोक!

कँपता असत्य, कँपती मिथ्या, बर्बरता कँपती है थर-थर!
कँपते सिंहासन, राजमुकुट, कँपते खिसके आते भू पर!
हैं अस्त्र-शस्त्र कुंठित लुठित सेनायें करती गृह-प्रयाण!
रणभेरी तेरी बजती है, उड़ता है तेरा ध्वज निशान!

हे युग-दृष्टा, हे युग-स्रष्टा,
पढ़ते कैसा यह मोक्ष-मंत्र?
इस राजतंत्र के खंडहर में
उगता अभिनव भारत स्वतंत्र

- सोहनलाल द्विवेदी



झाँसी की रानी

सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूटे भारत में आई फिर से नयी जवानी थी,
गुमी हुई आज़ादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी।
चमक उठी सन सत्तावन में, वह तलवार पुरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

कानपूर के नाना की, मुँहबोली बहन छबीली थी,
लक्ष्मीबाई नाम, पिता की वह संतान अकेली थी,
नाना के सँग पढ़ती थी वह, नाना के सँग खेली थी,
बरछी ढाल, कृपाण, कटारी उसकी यही सहेली थी।
वीर शिवाजी की गाथायें उसकी याद ज़बानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता की अवतार,
देख मराठे पुलकित होते उसकी तलवारों के वार,
नकली युद्ध-व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार,
सैन्य घेरना, दुर्ग तोड़ना ये थे उसके प्रिय खिलवार।
महाराष्ट्र-कुल-देवी उसकी भी आराध्य भवानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

हुई वीरता की वैभव के साथ सगाई झाँसी में,
ब्याह हुआ रानी बन आई लक्ष्मीबाई झाँसी में,
राजमहल में बजी बधाई खुशियाँ छाई झाँसी में,
चित्रा ने अर्जुन को पाया, शिव से मिली भवानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

उदित हुआ सौभाग्य, मुदित महलों में उजियाली छाई,
किंतु कालगति चुपके-चुपके काली घटा घेर लाई,
तीर चलाने वाले कर में उसे चूड़ियाँ कब भाई,
रानी विधवा हुई, हाय! विधि को भी नहीं दया आई।
निसंतान मरे राजाजी रानी शोक-समानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

बुझा दीप झाँसी का तब डलहौजी मन में हरषाया,
राज्य हड़प करने का उसने यह अच्छा अवसर पाया,
फ़ौरन फौजें भेज दुर्ग पर अपना झंडा फहराया,
लावारिस का वारिस बनकर ब्रिटिश राज्य झाँसी आया।
अश्रुपूर्णा रानी ने देखा झाँसी हुई बिरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

अनुनय विनय नहीं सुनती है, विकट शासकों की माया,
व्यापारी बन दया चाहता था जब यह भारत आया,
डलहौजी ने पैर पसारे, अब तो पलट गई काया,
राजाओं नव्वाबों को भी उसने पैरों ठुकराया।
रानी दासी बनी, बनी यह दासी अब महरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

छिनी राजधानी दिल्ली की, लखनऊ छिना बातों-बात,
कैद पेशवा था बिठुर में, हुआ नागपुर का भी घात,
उदैपुर, तंजौर, सतारा, करनाटक की कौन बिसात?
जबकि सिंध, पंजाब ब्रह्म पर अभी हुआ था वज्र-निपात।
बंगाले, मद्रास आदि की भी तो वही कहानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

रानी रोयीं रिनवासों में, बेगम ग़म से थीं बेज़ार,
उनके गहने कपड़े बिकते थे कलकते के बाज़ार,
सरे आम नीलाम छापते थे अंग्रेज़ों के अखबार,
'नागपूर के ज़ेवर ले लो लखनऊ के लो नौलख हार'
यों परदे की इज़्जत परदेशी के हाथ बिकानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

कुटियों में भी विषम वेदना, महलों में आहत अपमान,
वीर सैनिकों के मन में था अपने पुरखों का अभिमान,
नाना धुंधूपंत पेशवा जुटा रहा था सब सामान,
बहिन छबीली ने रण-चण्डी का कर दिया प्रकट आहवान।
हुआ यज्ञ प्रारम्भ उन्हें तो सोई ज्योति जगानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

महलों ने दी आग, झोंपड़ी ने ज्वाला सुलगाई थी,
यह स्वतंत्रता की चिनगारी अंतरतम से आई थी,
झाँसी चेती, दिल्ली चेती, लखनऊ लपटें छाई थी,
मेरठ, कानपूर, पटना ने भारी धूम मचाई थी,
जबलपूर, कोल्हापूर में भी कुछ हलचल उकसाने थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

इस स्वतंत्रता महायज्ञ में कई वीरवर आए काम,
नाना धुंधूपंत, ताँतिया, चतुर अज़ीमुल्ला सरनाम,
अहमदशाह मौलवी, ठाकुर कुँवरसिंह सैनिक अभिराम,
भारत के इतिहास गगन में अमर रहेंगे जिनके नाम।
लेकिन आज जुर्म कहलाती उनकी जो कुरबानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

इनकी गाथा छोड़, चले हम झाँसी के मैदानों में,
जहाँ खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मर्दानों में,
लेफ्टिनेंट वाकर आ पहुँचा, आगे बड़ा जवानों में,
रानी ने तलवार खींच ली, हुया द्वन्द्व असमानों में।
ज़खमी होकर वाकर भागा, उसे अजब हैरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

रानी बट्टी कालपी आई, कर सौ मील निरंतर पार,
घोड़ा थक कर गिरा भूमि पर गया स्वर्ग तत्काल सिंधार,
यमुना तट पर अंग्रेजों ने फिर खाई रानी से हार,
विजयी रानी आगे चल दी, किया ग्वालियर पर अधिकार।
अंग्रेजों के मित्र सिंधिया ने छोड़ी रजधानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

विजय मिली, पर अंग्रेजों की फिर सेना घिर आई थी,
अबके जनरल स्मिथ सम्मुख था, उसने मुँह की खाई थी,
काना और मंदरा सखियाँ रानी के संग आई थी,
युद्ध श्रेत्र में उन दोनों ने भारी मार मचाई थी।
पर पीछे ह्यूरोज़ आ गया, हाय! घिरी अब रानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

तो भी रानी मार काट कर चलती बनी सैन्य के पार,
किन्तु सामने नाला आया, था वह संकट विषम अपार,
घोड़ा अड़ा, नया घोड़ा था, इतने में आ गये अवार,
रानी एक, शत्रु बहुतेरे, होने लगे वार-पर-वार।
घायल होकर गिरी सिंहनी उसे वीर गति पानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

रानी गई सिधर चिता अब उसकी दिव्य सवारी थी,
मिला तेज से तेज, तेज की वह सच्ची अधिकारी थी,
अभी उम्र कुल तेइस की थी, मनुज नहीं अवतारी थी,
हमको जीवित करने आयी बन स्वतंत्रता-नारी थी,
दिखा गई पथ, सिखा गई हमको जो सीख सिखानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

जाओ रानी याद रखेंगे ये कृतज्ञ भारतवासी,
यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतंत्रता अविनासी,
होवे चुप इतिहास, लगे सच्चाई को चाहे फाँसी,
हो मदमाती विजय, मिटा दे गोलों से चाहे झाँसी।
तेरा स्मारक तू ही होगी, तू खुद अमिट निशानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

सुभद्रा कुमारी चौहान



मेरा नया बचपन

बार-बार आती है मुझको मधुर याद बचपन तेरी।
गया ले गया तू जीवन की सबसे मस्त खुशी मेरी॥

चिंता-रहित खेलना-खाना वह फिरना निर्भय स्वच्छंद।
कैसे भूला जा सकता है बचपन का अतुलित आनंद?

ऊँच-नीच का ज्ञान नहीं था छुआछूत किसने जानी?
बनी हुई थी वहाँ झोंपड़ी और चीथड़ों में रानी॥

किये दूध के कुल्ले मैंने चूस अँगूठा सुधा पिया।
किलकारी किल्लोल मचाकर सूना घर आबाद किया॥

रोना और मचल जाना भी क्या आनंद दिखाते थे।
बड़े-बड़े मोती-से आँसू जयमाला पहनाते थे॥

मैं रोई, माँ काम छोड़कर आई, मुझको उठा लिया।
झाड़-पोंछ कर चूम-चूम कर गीले गालों को सुखा दिया॥

दादा ने चंदा दिखलाया नेत्र नीर-युत दमक उठे।
धुली हुई मुस्कान देख कर सबके चेहरे चमक उठे॥

वह सुख का साम्राज्य छोड़कर मैं मतवाली बड़ी हुई।
लुटी हुई, कुछ ठगी हुई-सी दौड़ द्वार पर खड़ी हुई॥

लाजभरी आँखें थीं मेरी मन में उमँग रँगिली थी।
तान रसीली थी कानों में चंचल छैल छबीली थी॥

दिल में एक चुभन-सी भी थी यह दुनिया अलबेली थी।
मन में एक पहेली थी मैं सब के बीच अकेली थी॥

मिला, खोजती थी जिसको हे बचपन! ठगा दिया तूने।
अरे! जवानी के फंदे में मुझको फँसा दिया तूने॥

सब गलियाँ उसकी भी देखीं उसकी खुशियाँ न्यारी हैं।
प्यारी, प्रीतम की रँग-रलियों की स्मृतियाँ भी प्यारी हैं॥

माना मैंने युवा-काल का जीवन खूब निराला है।
आकांक्षा, पुरुषार्थ, ज्ञान का उदय मोहनेवाला है॥

किंतु यहाँ झंझट है भारी युद्ध-क्षेत्र संसार बना।
चिंता के चक्कर में पड़कर जीवन भी है भार बना॥

आ जा बचपन! एक बार फिर दे दे अपनी निर्मल शांति।
व्याकुल व्यथा मिटानेवाली वह अपनी प्राकृत विश्रान्ति॥

वह भोली-सी मधुर सरलता वह प्यारा जीवन निष्पाप।
क्या आकर फिर मिटा सकेगा तू मेरे मन का संताप?

मैं बचपन को बुला रही थी बोल उठी बिटिया मेरी।
नंदन वन-सी फूल उठी यह छोटी-सी कुटिया मेरी॥

'माँ ओ' कहकर बुला रही थी मिट्टी खाकर आयी थी।
कुछ मुँह में कुछ लिये हाथ में मुझे खिलाने लायी थी॥

पुलक रहे थे अंग, दृगों में कौतुहल था छलक रहा।
मुँह पर थी आह्लाद-लालिमा विजय-गर्व था झलक रहा॥

मैंने पूछा 'यह क्या लायी?' बोल उठी वह 'माँ, काओ'।
हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशी से मैंने कहा - 'तुम्हीं खाओ'॥

पाया मैंने बचपन फिर से बचपन बेटी बन आया।
उसकी मंजुल मूर्ति देखकर मुझ में नवजीवन आया॥

मैं भी उसके साथ खेलती खाती हूँ, तुतलाती हूँ।
मिलकर उसके साथ स्वयं मैं भी बच्ची बन जाती हूँ॥

जिसे खोजती थी बरसों से अब जाकर उसको पाया।
भाग गया था मुझे छोड़कर वह बचपन फिर से आया॥

- सुभद्रा कुमारी चौहान



ठुकरा दो या प्यार करो

देव! तुम्हारे कई उपासक कई ढंग से आते हैं।
सेवा में बहुमुल्य भेंट वे कई रंग की लाते हैं॥

धूमधाम से साजबाज से वे मंदिर में आते हैं।
मुक्तामणि बहुमुल्य वस्तुएँ लाकर तुम्हें चढ़ाते हैं॥

मैं ही हूँ गरीबिनी ऐसी जो कुछ साथ नहीं लायी।
फिर भी साहस कर मंदिर में पूजा करने चली आयी॥

धूप-दीप-नैवेद्य नहीं है झांकी का श्रृंगार नहीं।
हाय! गले में पहनाने को फूलों का भी हार नहीं॥

कैसे करूँ कीर्तन, मेरे स्वर में है माधुर्य नहीं।
मन का भाव प्रकट करने को वाणी में चातुर्य नहीं॥

नहीं दान है, नहीं दक्षिणा खाली हाथ चली आयी।
पूजा की विधि नहीं जानती, फिर भी नाथ! चली आयी॥

पूजा और पुजापा प्रभुवर! इसी पुजारिन को समझो।
दान-दक्षिणा और निछावर इसी भिखारिन को समझो॥

मैं उनमत्त प्रेम की प्यासी हृदय दिखाने आयी हूँ।
जो कुछ है, वह यही पास है, इसे चढ़ाने आयी हूँ॥

चरणों पर अर्पित है, इसको चाहो तो स्वीकार करो।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है ठुकरा दो या प्यार करो॥

- सुभद्रा कुमारी चौहान



अमर स्पर्श

'युगपथ' से

खिल उठा हृदय,
पा स्पर्श तुम्हारा अमृत अभय!

खुल गए साधना के बंधन,
संगीत बना, उर का रोदन,
अब प्रीति द्रवित प्राणों का पण,
सीमाएँ अमिट हुई सब लय।

क्यों रहे न जीवन में सुख दुख
क्यों जन्म मृत्यु से चित्त विमुख?
तुम रहो दृगों के जो सम्मुख
प्रिय हो मुझको भ्रम भय संशय!

तन में आएँ शैशव यौवन
मन में हों विरह मिलन के व्रण,
युग स्थितियों से प्रेरित जीवन
उर रहे प्रीति में चिर तन्मय!

जो नित्य अनित्य जगत का क्रम
वह रहे, न कुछ बदले, हो कम,
हो प्रगति हास का भी विभ्रम,
जग से परिचय, तुमसे परिणय!

तुम सुंदर से बन अति सुंदर
आओ अंतर में अंतरतर,
तुम विजयी जो, प्रिय हो मुझ पर
वरदान, पराजय हो निश्चय!

- सुमित्रानंदन पंत



विजय

'उत्तरा' से

मैं चिर श्रद्धा लेकर आई
वह साध बनी प्रिय परिचय में,
मैं भक्ति हृदय में भर लाई,
वह प्रीति बनी उर परिणय में।

जिज्ञासा से था आकुल मन
वह मिटी, हुई कब तन्मय मैं,
विश्वास माँगती थी प्रतिक्षण
आधार पा गई निश्चय मैं !

प्राणों की तृष्णा हुई लीन
स्वप्नों के गोपन संचय में
संशय भय मोह विषाद हीन
लज्जा करुणा में निर्भय मैं !

लज्जा जाने कब बनी मान,
अधिकार मिला कब अनुनय में
पूजन आराधन बने गान
कैसे, कब? करती विस्मय मैं !

उर करुणा के हित था कातर
सम्मान पा गई अक्षय मैं,
पापों अभिशापों की थी घर
वरदान बनी मंगलमय मैं !

बाधा-विरोध अनुकूल बने
अंतर्चेतन अरुणोदय में,

पथ भूल विहँस मृदु फूल बने
मैं विजयी प्रिय, तेरी जय में।

- सुमित्रानंदन पंत



चिट्ठी सी शाम

एक और चिट्ठी सी शाम
डूब गयी सूरज के नाम।

जाड़े की धूप और
कुहरे की भाषा

कोने में टँगी हुई
गहरी अभिलाषा

आसमान के हाथों
चाँदी का गुच्छा

ताल में खिली जैसे
फिर कोई इच्छा

छत से ऊपर उठते
धुएँ के कलाम

- सुरेन्द्र काले



राम की शक्ति पूजा

रवि हुआ अस्त
ज्योति के पत्र पर लिखा
अमर रह गया राम-रावण का अपराजेय समर।
आज का तीक्ष्ण शरविधृतक्षिप्रकर, वेगप्रखर,
शतशेल सम्बरणशील, नील नभगर्जित स्वर,
प्रतिपल परिवर्तित व्यूह
भेद कौशल समूह
राक्षस विरुद्ध प्रत्यूह,
क्रुद्ध कपि विषम हूह,
विच्छुरित वह्नि राजीवनयन हतलक्ष्य बाण,
लोहित लोचन रावण मदमोचन महीयान,
राघव लाघव रावण वारणगत युग्म प्रहर,
उद्धत लंकापति मर्दित कपि दलबल विस्तर,
अनिमेष राम विश्वजिद्दिव्य शरभंग भाव,
विद्धांगबद्ध कोदण्ड मुष्टि खर रुधिर स्राव,
रावण प्रहार दुर्वार विकल वानर दलबल,
मुष्टित सुग्रीवांगद भीषण गवाक्ष गय नल,
वारित सौमित्र भल्लपति अगणित मल्ल रोध,
गर्जित प्रलयाब्धि क्षुब्ध हनुमत् केवल प्रबोध,
उद्गीरित वह्नि भीम पर्वत कपि चतुःप्रहर,
जानकी भीरु उर आशा भर, रावण सम्बर।
लौटे युग दल।
राक्षस पदतल पृथ्वी टलमल,
बिंध महोल्लास से बार बार आकाश विकल।
वानर वाहिनी खिन्न, लख निज पति चरणचिह्न
चल रही शिविर की ओर स्थविरदल ज्यों विभिन्न।
प्रशमित हैं वातावरण, नमित मुख सान्ध्य कमल
लक्ष्मण चिन्तापल पीछे वानर वीर सकल
रघुनायक आगे अवनी पर नवनीतचरण,

श्लथ धनुगुण है, कटिबन्ध त्रस्त तूणीरधरण,
दृढ जटा मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वृक्ष पर, विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार
चमकतीं दूर ताराएं ज्यों हों कहीं पार।

आये सब शिविर
सानु पर पर्वत के, मन्थर
सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवान आदिक वानर
सेनापति दल विशेष के, अंगद, हनुमान
नल नील गवाक्ष, प्रात के रण का समाधान
करने के लिए, फेर वानर दल आश्रय स्थल।

बैठे रघुकुलमणि श्वेत शिला पर, निर्मल जल
ले आये कर पद क्षालनार्थ पटु हनुमान
अन्य वीर सर के गये तीर सन्ध्या विधान
वन्दना ईश की करने को लौटे सत्वर,
सब घेर राम को बैठे आज्ञा को तत्पर,
पीछे लक्ष्मण, सामने विभीषण भल्लधीर,
सुग्रीव, प्रान्त पर पदपद्य के महावीर,
यथुपति अन्य जो, यथास्थान हो निर्निमेष
देखते राम को जितसरोजमुख श्याम देश।

है अमानिशा, उगलता गगन घन अन्धकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन-चार,
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल,
भूधर ज्यों ध्यानमग्न, केवल जलती मशाल।
स्थिर राघवेन्द को हिला रहा फिर फिर संशय
रह रह उठता जग जीवन में रावण जय भय,
जो नहीं हुआ आज तक हृदय रिपुदम्य श्रान्त,
एक भी, अयुत-लक्ष में रहा जो दुराक्रान्त,
कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार बार,

असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार हार।

ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत
जागी पृथ्वी तनया कुमारिका छवि अच्युत
देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह का, प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का नयनों से गोपन प्रिय सम्भाषण
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान पतन,
काँपते हुए किसलय, झरते पराग समुदय,
गाते खग नवजीवन परिचय, तरू मलय वलय,
ज्योतिः प्रपात स्वर्गीय, ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,
जानकी-नयन-कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय।

सिहरा तन, क्षण भर भूला मन, लहरा समस्त,
हर धनुर्भंग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त,
फूटी स्मिति सीता ध्यानलीन राम के अधर,
फिर विश्व विजय भावना हृदय में आयी भर,
वे आये याद दिव्य शर अगणित मन्त्रपूत,
फड़का पर नभ को उड़े सकल ज्यों देवदूत,
देखते राम, जल रहे शलभ ज्यों रजनीचर,
ताड़का, सुबाहु बिराध, शिरस्त्रय, दूषण, खर,

फिर देखी भीम मूर्ति आज रण देखी जो
आच्छादित किये हुए सम्मुख समग्र नभ को,
ज्योतिर्मय अस्त्र सकल बुझ बुझ कर हुए क्षीण,
पा महानिलय उस तन में क्षण में हुए लीन,
लख शंकाकुल हो गये अतुल बल शेष शयन,
खिच गये दृगों में सीता के राममय नयन,
फिर सुना हँस रहा अट्टहास रावण खलखल,
भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्तादल।

बैठे मारुति देखते रामचरणारविन्द,

युग 'अस्ति नास्ति' के एक रूप, गुणगण अनिन्द्य,
साधना मध्य भी साम्य वामा कर दक्षिणपद,
दक्षिण करतल पर वाम चरण, कपिवर, गद् गद्
पा सत्य सच्चिदानन्द रूप, विश्राम धाम,
जपते सभक्ति अजपा विभक्त हो राम नाम।
युग चरणों पर आ पड़े अस्तु वे अश्रु युगल,
देखा कवि ने, चमके नभ में ज्यों तारादल।
ये नहीं चरण राम के, बने श्यामा के शुभ,
सोहते मध्य में हीरक युग या दो कौस्तुभ,
टूटा वह तार ध्यान का, स्थिर मन हुआ विकल
सन्दिग्ध भाव की उठी दृष्टि, देखा अविकल
बैठे वे वहीं कमल लोचन, पर सजल नयन,
व्याकुल, व्याकुल कुछ चिर प्रफुल्ल मुख निश्चेतन।
"ये अश्रु राम के" आते ही मन में विचार,
उद्वेल हो उठा शक्ति खेल सागर अपार,
हो श्वसित पवन उनचास पिता पक्ष से तुमुल
एकत्र वक्ष पर बहा वाष्प को उड़ा अतुल,
शत घूर्णावर्त, तरंग भंग, उठते पहाड़,
जलराशि राशिजल पर चढ़ता खाता पछाड़,
तोड़ता बन्ध प्रतिसन्ध धरा हो स्फीत वक्ष
दिग्विजय अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष,
शत वायु वेगबल, डूबा अतल में देश भाव,
जलराशि विपुल मथ मिला अनिल में महाराव
वज्रांग तेजघन बना पवन को, महाकाश
पहुँचा, एकादश रूढ़ क्षुब्ध कर अट्टहास।
रावण महिमा श्यामा विभावरी, अन्धकार,
यह रूढ़ राम पूजन प्रताप तेजः प्रसार,
इस ओर शक्ति शिव की दशस्कन्धपूजित,
उस ओर रूढ़वन्दन जो रघुनन्दन कूजित,
करने को ग्रस्त समस्त व्योम कपि बढ़ा अटल,
लख महानाश शिव अचल, हुए क्षण भर चंचल,
श्यामा के पद तल भार धरण हर मन्दस्वर

बोले "सम्बरो, देवि, निज तेज, नहीं वानर
यह, नहीं हुआ श्रृंगार युग्मगत, महावीर।
अर्चना राम की मूर्तिमान अक्षय शरीर,
चिर ब्रह्मचर्यरत ये एकादश रुद्र, धन्य,
मर्यादा पुरूषोत्तम के सर्वोत्तम, अनन्य
लीलासहचर, दिव्यभावधर, इन पर प्रहार
करने पर होगी देवि, तुम्हारी विषम हार,
विद्या का ले आश्रय इस मन को दो प्रबोध,
झुक जायेगा कपि, निश्चय होगा दूर रोध।"
कह हुए मौन शिव, पतन तनय में भर विस्मय
सहसा नभ से अंजनारूप का हुआ उदय।
बोली माता "तुमने रवि को जब लिया निगल
तब नहीं बोध था तुम्हें, रहे बालक केवल,
यह वही भाव कर रहा तुम्हें व्याकुल रह रहा।
यह लज्जा की है बात कि माँ रहती सह सह।
यह महाकाश, है जहाँ वास शिव का निर्मल,
पूजते जिन्हें श्रीराम उसे ग्रसने को चल
क्या नहीं कर रहे तुम अनर्थ? सोचो मन में,
क्या दी आज्ञा ऐसी कुछ श्री रधुनन्दन ने?
तुम सेवक हो, छोड़कर धर्म कर रहे कार्य,
क्या असम्भाव्य हो यह राघव के लिये धार्य?"
कपि हुए नम्र, क्षण में माता छवि हुई लीन,
उतरे धीरे धीरे गह प्रभुपद हुए दीन।

राम का विषण्णानन देखते हुए कुछ क्षण,
"हे सखा" विभीषण बोले "आज प्रसन्न वदन
वह नहीं देखकर जिसे समग्र वीर वानर
भल्लुक विगत-श्रम हो पाते जीवन निर्जर,
रघुवीर, तीर सब वही तूण में है रक्षित,
है वही वक्ष, रणकुशल हस्त, बल वही अमित,
हैं वही सुमित्रानन्दन मेघनादजित् रण,
हैं वही भल्लपति, वानरेन्द्र सुग्रीव प्रमन,

ताराकुमार भी वही महाबल श्वेत धीर,
अप्रतिभट वही एक अर्बुद सम महावीर
हैं वही दक्ष सेनानायक है वही समर,
फिर कैसे असमय हुआ उदय यह भाव प्रहर।
रघुकुलगौरव लघु हुए जा रहे तुम इस क्षण,
तुम फेर रहे हो पीठ, हो रहा हो जब जय रण।

कितना श्रम हुआ व्यर्थ, आया जब मिलनसमय,
तुम खींच रहे हो हस्त जानकी से निर्दय!
रावण? रावण लम्पट, खल कल्मष गताचार,
जिसने हित कहते किया मुझे पादप्रहार,
बैठा उपवन में देगा दुख सीता को फिर,
कहता रण की जयकथा पारिषददल से घिर,
सुनता वसन्त में उपवन में कलकूजित्पिक
में बना किन्तु लंकापति, धिक राघव, धिक धिक?

सब सभा रही निस्तब्ध
राम के स्तिमित नयन
छोड़ते हुए शीतल प्रकाश देखते विमन,
जैसे ओजस्वी शब्दों का जो था प्रभाव
उससे न इन्हें कुछ चाव, न कोई दुराव,
ज्यों हों वे शब्दमात्र मैत्री की समानुरक्ति,
पर जहाँ गहन भाव के ग्रहण की नहीं शक्ति।

कुछ क्षण तक रहकर मौन सहज निज कोमल स्वर,
बोले रघुमणि "मित्रवर, विजय होगी न, समर
यह नहीं रहा नर वानर का राक्षस से रण,
उतरी पा महाशक्ति रावण से आमन्त्रण,
अन्याय जिधर, हैं उधर शक्ति।" कहते छल छल
हो गये नयन, कुछ बूँद पुनः ढलके दृगजल,
रुक गया कण्ठ, चमक लक्ष्मण तेजः प्रचण्ड
धँस गया धरा में कपि गह युगपद, मसक दण्ड

स्थिर जाम्बवान, समझते हुए ज्यों सकल भाव,
व्याकुल सुग्रीव, हुआ उर में ज्यों विषम घाव,
निश्चित सा करते हुए विभीषण कार्यक्रम
मौन में रहा यों रूपन्दित वातावरण विषम।
निज सहज रूप में संयत हो जानकीप्राण
बोले "आया न समझ में यह दैवी विधान।
रावण, अधर्मरत भी, अपना, मैं हुआ अपर,
यह रहा, शक्ति का खेल समर, शंकर, शंकर!
करता मैं योजित बार बार शरनिकर निशित,
हो सकती जिनसे यह संसृति सम्पूर्ण विजित,
जो तेजः पुंज, सृष्टि की रक्षा का विचार,
हैं जिनमें निहित पतन घातक संस्कृति अपार।

शत शुद्धिबोध, सूक्ष्मातिसूक्ष्म मन का विवेक,
जिनमें है क्षात्रधर्म का धृत पूर्णाभिषेक,
जो हुए प्रजापतियों से संयम से रक्षित,
वे शर हो गये आज रण में श्रीहत, खण्डित!
देखा है महाशक्ति रावण को लिये अंक,
लांछन को ले जैसे शशांक नभ में अशंक,
हत मन्त्रपूत शर सम्वृत करतीं बार बार,
निष्फल होते लक्ष्य पर क्षिप्र वार पर वार।
विचलित लख कपिदल क्रुद्ध, युद्ध को मैं ज्यों ज्यों,
झक-झक झलकती वह्नि वामा के दृग त्यों त्यों,
पश्चात्, देखने लगीं मुझे बँध गये हस्त,
फिर खिंचा न धनु, मुक्त ज्यों बँधा मैं, हुआ त्रस्त!"

कह हुए भानुकुलभूषण वहाँ मौन क्षण भर,
बोले विश्वस्त कण्ठ से जाम्बवान, "रघुवर,
विचलित होने का नहीं देखता मैं कारण,
हे पुरुषसिंह, तुम भी यह शक्ति करो धारण,
आराधन का दृढ आराधन से दो उत्तर,
तुम वरो विजय संयत प्राणों से प्राणों पर।

रावण अशुद्ध होकर भी यदि कर सकता त्रस्त
तो निश्चय तुम हो सिद्ध करोगे उसे ध्वस्त,
शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन।
छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो, रघुनन्दन!
तब तक लक्ष्मण हैं महावाहिनी के नायक,
मध्य माग में अंगद, दक्षिण-श्वेत सहायक।
मैं, भल्ल सैन्य, हैं वाम पार्श्व में हनुमान,
नल, नील और छोटे कपिगण, उनके प्रधान।
सुग्रीव, विभीषण, अन्य यथुपति यथासमय
आयेंगे रक्षा हेतु जहाँ भी होगा भय।"

खिल गयी सभा। "उत्तम निश्चय यह, भल्लनाथ!"
कह दिया ऋक्ष को मान राम ने झुका माथ।
हो गये ध्यान में लीन पुनः करते विचार,
देखते सकल, तन पुलकित होता बार बार।
कुछ समय अनन्तर इन्दीवर निन्दित लोचन
खुल गये, रहा निष्पलक भाव में मज्जित मन,
बोले आवेग रहित स्वर से विश्वास स्थित
"मातः, दशभुजा, विश्वज्योति; मैं हूँ आश्रित;
हो विद्ध शक्ति से है खल महिषासुर मर्दित;
जनरंजन चरणकमल तल, धन्य सिंह गर्जित!
यह, यह मेरा प्रतीक मातः समझा इंगित,
मैं सिंह, इसी भाव से करूँगा अभिनन्दित।"

कुछ समय तक स्तब्ध हो रहे राम छवि में निमग्न,
फिर खोले पलक कमल ज्योतिर्दल ध्यानलग्न।
हैं देख रहे मन्त्री, सेनापति, वीरासन
बैठे उमड़ते हुए, राघव का स्मित आनन।
बोले भावस्थ चन्द्रमुख निन्दित रामचन्द्र,
प्राणों में पावन कम्पन भर स्वर मेघमन्द,
"देखो, बन्धुवर, सामने स्थिर जो वह भूधर
शिभित शत हरित गुल्म तृण से श्यामल सुन्दर,

पार्वती कल्पना हैं इसकी मकरन्द विन्दु,
गरजता चरण प्रान्त पर सिंह वह, नहीं सिन्धु।

दशदिक समस्त हैं हस्त, और देखो ऊपर,
अम्बर में हुए दिगम्बर अर्चित शशि शेखर,
लख महाभाव मंगल पदतल धँस रहा गर्व,
मानव के मन का असुर मन्द हो रहा खर्वा।"
फिर मधुर दृष्टि से प्रिय कपि को खींचते हुए
बोले प्रियतर स्वर से अन्तर सींचते हुए,
"चाहिए हमें एक सौ आठ, कपि, इन्दीवर,
कम से कम, अधिक और हों, अधिक और सुन्दर,
जाओ देवीदह, उपःकाल होते सत्वर
तोड़ो, लाओ वे कमल, लौटकर लड़ो समर।"
अवगत हो जाम्बवान से पथ, दूरत्व, स्थान,
प्रभुपद रज सिर धर चले हर्ष भर हनुमान।
राघव ने विदा किया सबको जानकर समय,
सब चले सदय राम की सोचते हुए विजय।
निशि हुई विगतः नभ के ललाट पर प्रथमकिरण
फूटी रघुनन्दन के दृग महिमा ज्योति हिरण।

हैं नहीं शरासन आज हस्त तूणीर स्कन्ध
वह नहीं सोहता निबिड़ जटा दृढ मुकुटबन्ध,
सुन पड़ता सिंहनाद रण कोलाहल अपार,
उमड़ता नहीं मन, स्तब्ध सुधी हैं ध्यान धार,
पूजोपरान्त जपते दुर्गा, दशभुजा नाम,
मन करते हुए मनन नामों के गुणग्राम,
बीता वह दिवस, हुआ मन स्थिर इष्ट के चरण
गहन से गहनतर होने लगा समाराधन।

क्रम क्रम से हुए पार राघव के पंच दिवस,
चक्र से चक्र मन बढ़ता गया ऊर्ध्व निरलस,
कर जप पूरा कर एक चढाते इन्दीवर,

निज पुरश्चरण इस भाँति रहे हैं पूरा कर।
चढ़ षष्ठ दिवस आज्ञा पर हुआ समाहित मन,
प्रतिजप से खिंच खिंच होने लगा महाकर्षण,
संचित त्रिकुटी पर ध्यान द्विदल देवीपद पर,
जप के स्वर लगा काँपने थर थर थर अम्बर।
दो दिन निःस्पन्द एक आसन पर रहे राम,
अर्पित करते इन्दीवर जपते हुए नाम।
आठवाँ दिवस मन ध्यान्युक्त चढ़ता ऊपर
कर गया अतिक्रम ब्रह्मा हरि शंकर का स्तर,
हो गया विजित ब्रह्माण्ड पूर्ण, देवता स्तब्ध,
हो गये दग्ध जीवन के तप के समारब्ध।
रह गया एक इन्दीवर, मन देखता पार
प्रायः करने हुआ दुर्ग जो सहस्रार,
द्विप्रहर, रात्रि, साकार हुई दुर्गा छिपकर
हँस उठा ले गई पुजा का प्रिय इन्दीवर।

यह अन्तिम जप, ध्यान में देखते चरण युगल
राम ने बढ़ाया कर लेने को नीलकमल।
कुछ लगा न हाथ, हुआ सहसा स्थिर मन चंचल,
ध्यान की भूमि से उतरे, खोले पलक विमल।
देखा, वहाँ रिक्त स्थान, यह जप का पूर्ण समय,
आसन छोड़ना असिद्धि, भर गये नयनद्वय,
"धिक् जीवन को जो पाता ही आया है विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध
जानकी! हाय उद्धार प्रिया का हो न सका,
वह एक और मन रहा राम का जो न थका।
जो नहीं जानता दैन्य, नहीं जानता विनय,
कर गया भेद वह मायावरण प्राप्त कर जय।

बुद्धि के दुर्ग पहुँचा विद्युत्गति हतचेतन
राम में जगी स्मृति हुए सजग पा भाव प्रमन।
"यह है उपाय", कह उठे राम ज्यों मन्द्रित घन

"कहती थीं माता मुझको सदा राजीवनयन।
दो नील कमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मात एक नयन।"
कहकर देखा तूणीर ब्रह्मशर रहा झलक,
ले लिया हस्त लक लक करता वह महाफलक।
ले अस्त्र वाम पर, दक्षिण कर दक्षिण लोचन
ले अर्पित करने को उद्यत हो गये सुमन
जिस क्षण बँध गया बेधने को दृग दृढ निश्चय,
काँपा ब्रह्माण्ड, हुआ देवी का त्वरित उदय।

"साधु, साधु, साधक धीर, धर्म-धन धन्य राम!"
कह, लिया भगवती ने राघव का हस्त थाम।
देखा राम ने, सामने श्री दुर्गा, भास्वर
वामपद असुर स्कन्ध पर, रहा दक्षिण हरि पर।
ज्योतिर्मय रूप, हस्त दश विविध अस्त्र सज्जित,
मन्द स्मित मुख, लख हुई विश्व की श्री लज्जित।
हैं दक्षिण में लक्ष्मी, सरस्वती वाम भाग,
दक्षिण गणेश, कार्तिक बायें रणरंग राग,
मस्तक पर शंकर! पदपद्मों पर श्रद्धाभर
श्री राघव हुए प्रणत मन्द स्वरवन्दन कर।

"होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन।"
कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन।

- निराला



संध्या सुन्दरी

दिवसावसान का समय -
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुन्दरी, परी सी,
धीरे, धीरे, धीरे,
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर-मधुर हैं दोनों उसके अधर,
किंतु ज़रा गंभीर, नहीं है उसमें हास-विलास।
हँसता है तो केवल तारा एक -
गुँथा हुआ उन घुँघराले काले-काले बालों से,
हृदय राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।
अलसता की-सी लता,
किंतु कोमलता की वह कली,
सखी-नीरवता के कंधे पर डाले बाँह,
छाँह सी अम्बर-पथ से चली।
नहीं बजती उसके हाथ में कोई वीणा,
नहीं होता कोई अनुराग-राग-आलाप,
नूपुरों में भी रुन-झुन रुन-झुन नहीं,
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा 'चुप चुप चुप'
है गूँज रहा सब कहीं -
व्योम मंडल में, जगतीजल में -
सोती शान्त सरोवर पर उस अमल कमलिनी-दल में -
सौंदर्य-गर्विता-सरिता के अति विस्तृत वक्षस्थल में -
धीर-वीर गम्भीर शिखर पर हिमगिरि-अटल-अचल में -
उत्ताल तरंगाघात-प्रलय घनगर्जन-जलधि-प्रबल में -
क्षिति में जल में नभ में अनिल-अनल में -
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा 'चुप चुप चुप'
है गूँज रहा सब कहीं -
और क्या है? कुछ नहीं।
मदिरा की वह नदी बहाती आती,
थके हुए जीवों को वह सरुनेह,

प्याला एक पिलाती।

सुलाती उन्हें अंक पर अपने,
दिखलाती फिर विस्मृति के वह अगणित मीठे सपने।
अर्द्धरात्री की निश्चलता में हो जाती जब लीन,
कवि का बढ़ जाता अनुराग,
विरहाकुल कमनीय कंठ से,
आप निकल पड़ता तब एक विहाग!

- निराला



वीणावादिनि

वर दे, वीणावादिनि वर दे।
प्रिय स्वतंत्र रव, अमृत मंत्र नव भारत में भर दे।
काट अंध उर के बंधन स्तर
बहा जननि ज्योतिर्मय निझिर
कलुष भेद तम हर प्रकाश भर
जगमग जग कर दे।
नव गति नव लय ताल छंद नव
नवल कंठ नव जलद मन्द्र रव
नव नभ के नव विहग वृंद को,
नव पर नव स्वर दे।

- निराला



फूल नहीं बदले गुलदस्तों के

टूटे आस्तीन का बटन
या कुर्ते की खुले सिवन
कदम-कदम पर मौके, तुम्हें याद करने के।

फूल नहीं बदले गुलदस्तों के
धूल मेजपोश पर जमी हुई।
जहाँ-तहाँ पड़ी दस किताबों पर
घनी सौ उदासियाँ थमी हुई।

पोर-पोर टूटता बदन
कुछ कहने-सुनने का मन
कदम-कदम पर मौके, तुम्हें याद करने के।

अरसे से बदला रूमाल नहीं
चाभी क्या जाने रख दी कहाँ।
दर्पण पर सिंदूरी रेख नहीं
चीज़ नहीं मिलती रख दो जहाँ।

चौक की धुआँती घुटन
सुग्गे की सुमिरिनी रटन
कदम-कदम पर मौके, तुम्हें याद करने के।

किसे पड़ी, मछली-सी तड़प जाए
गाल शेव करने में छिल गया।
तुमने जो कलम एक रोपी थी
उसमें पहला गुलाब खिल गया।

पत्र की प्रतीक्षा के क्षण
शहद की शराब की चुभन
कदम-कदम पर मौके, तुम्हें याद करने के।

- उमाकान्त मालविय



जो हवा में है

जो हवा में है, लहर में है
क्यों नहीं वह बात
मुझमें है?

शाम कंधों पर लिए अपने
ज़िन्दगी के रू-ब-रू चलना
रोशनी का हमसफ़र होना
उम्र की कन्दील का जलना
आग जो
जलते सफ़र में है
क्यों नहीं वह बात
मुझमें है?

रोज़ सूरज की तरह उगना
शिखर पर चढ़ना, उतर जाना
घाटियों में रंग भर जाना
फिर सुरंगों से गुज़र जाना
जो हंसी कच्ची उमर में है
क्यों नहीं वह बात
मुझमें है?

एक नन्हीं जान चिड़िया का
डाल से उड़कर हवा होना
सात रंगों के लिये दुनिया
वापसी में नींद भर सोना
जो खुला आकाश स्वर में है
क्यों नहीं वह बात
मुझमें है?



धूप

घाटियों में ऋतु सुखाने लगी है
मेघ धोये वस्त्र अनगिन रंग के
आ गए दिन, धूप के सत्संग के।

पर्वतों पर छन्द फिर बिखरा दिये हैं
लौटकर जातीं घटाओं ने।
पेड़, फिर पढ़ने लगी हैं, धूप के अखबार
फुरसत से दिशाओं में।
निकल, फूलों के नशीली बार से
लड़कड़ाती है हवा
पाँव दो, पड़ते नहीं हैं ढग के।

बँध न पाई, निझरों की बाँह, उफनाई नदी
तटों से मुँह जोड़ बतियाने लगी है।
निकल जंगल की भुजाओं से, एक आदिम गंध
आंगन की तरफ आने लगी है।

आँख में आकाश की चुभने लगी हैं
दृश्य शीतल, नेह-देह प्रसंग के।
आ गए दिन, धूप के सत्संग के।

- विनोद निगम



अचानक

फिर नदी अचानक सिहर उठी
यह कौन छू गया साँझ ढले

संयम से बहते ही रहना
जिसके स्वभाव में शामिल था
दिन-रात कटावों के घर में
ढहना भी जिसका लाजिम था

वह नदी अचानक लहर उठी
यह कौन छू गया साँझ ढले

छू लिया किसी सुधि के क्षण ने
या छंदभरी पुरवाई ने
या फिर गहराते सावन ने
या गंधमई अमराई ने

अलसायी धारा सँवर उठीं
यह कौन छू गया साँझ ढले

कैसा फूटा इसके जल में -
सरगम, किसने संगीत रचा
मिलना मुश्किल जिसका जग में
कैसे इसमें वह गीत बचा

सोते पानी में भँवर उठी
यह कौन छू गया साँझ ढले

- विनोद श्रीवास्तव



दुर्गा वन्दना

जय जय जय जननी। जय जय जय जननी।

जय जननी, जय जन्मदायिनी।
विश्व वन्दिनी लोक पालिनी।
देवि पार्वती, शक्ति शालिनी।

जय जय जय जननी। जय जय जय जननी।

परम पूजिता, महापुनीता।
जय दुर्गा, जगदम्बा माता।
जन्म मृत्यु भवसागर तरिणी।

जय जय जय जननी। जय जय जय जननी।

सर्वरक्षिका, अन्नपूर्णा।
महामानिनी, महामयी मां।
ज्योतीरूपिणी, पथप्रदर्शिनी।

जय जय जय जननी। जय जय जय जननी।

सिंहवाहिनी, शस्त्रधारिणी।
पापभंजिनी, मुक्तिकारिणी।
महिषासुरमर्दिनी, विजयिनी।

जय जय जय जननी। जय जय जय जननी।

- विनोद तिवारी



जीवन दीप

मेरा एक दीप जलता है।
अंधियारों में प्रखर प्रज्ज्वलित,
तूफानों में अचल, अविचलित,
यह दीपक अविजित, अपराजित।
मेरे मन का ज्योतिपुंज
जो जग को ज्योतिर्मय करता है।
मेरा एक दीप जलता है।

सूर्य किरण जल की बून्दों से
छन कर इन्द्रधनुष बन जाती,
वही किरण धरती पर कितने
रंग बिरंगे फूल खिलाती।
ये कितनी विभिन्न घटनायें,
पर दोनों में निहित
प्रकृति का नियम एक है,
जो अटूट है।
इस पर अडिग आस्था मुझको
जो विज्ञान मुझे जीवन में
पग पग पर प्रेरित करता है।
मेरा एक दीप जलता है।

यह विशाल ब्रह्मांड
यहाँ मैं लघु हूँ
लेकिन हीन नहीं हूँ।
मैं पदार्थ हूँ
ऊर्जा का भौतिकीकरण हूँ।
नश्वर हूँ,
पर क्षीण नहीं हूँ।
मैं हूँ अपना अहम
शक्ति का अमिट स्रोत, जो

न्यूटन के सिद्धान्त सरीखा
परम सत्य है,
सुन्दर है, शिव है शाश्वत है।
मेरा यह विश्वास निरन्तर
मेरे मानस में पलता है।
मेरा एक दीप जलता है।

- विनोद तिवारी



मेरी कविता

मेरी कविता अगर कभी साकार हुई तो
मधुर मोहिनी मधुऋतु बन कर
सुरभित, सुमनित, सुस्मित बन कर
मेरे मन की मरुस्थली पर
श्यामल बदली सी बरसेगी।
मेरी कविता अगर कभी साकार हुई तो
किसी फूल की पंखुरियों पर
ओस बिन्दु बन कर छलकेगी।

मूक हृदय के रूपन्दन में कितने कोमल भाव प्रतिध्वनित।
युगों युगों की सुप्त वेदना मेरे गीतों में प्रतिबिम्बित।
मेरी पीड़ा अगर कभी मुस्कान हुई तो
सागरिका की लहर लहर पर
शुभ्र ज्योत्सना सी थिरकेगी।
मेरी कविता अगर कभी साकार हुई तो।

इन्द्र धनुष के रंग सजाये एक मनोरम प्रतिछवि उज्ज्वल।
एक प्रेरणा, एक चेतना, संग संग चलती जो प्रतिपल।
मेरी यह अनुभूति कभी अभिव्यक्ति हुई तो
रुनेहसित्त, गीली आँखों से
आँसू बन कर के टलकेगी।
मेरी कविता अगर कभी साकार हुई तो।

कुछ करने की आकाँक्षा है, कुछ पाने की अभिलाषा है।
सारे स्वप्न सत्य होते हैं, जीवन की यह परिभाषा है।
मेरी आशा अगर कभी विश्वास हुई तो
हिमगिरि की पाषाणी छाती
से गंगा बन कर निकलेगी।
मेरी कविता अगर कभी साकार हुई तो।

कितना है विस्तार सृष्टि में, फिर भी कितनी सीमायें हैं।
सब कुछ है उपलब्ध जगत में, फिर भी कितनी कुंठायें हैं।
मेरी धरती अगर कभी आकाश हुई तो
अन्तरिक्ष में उल्का बन कर
टूट टूट कर भी चमकेगी।
मेरी कविता अगर कभी साकार हुई तो।

- विनोद तिवारी



प्रवासी गीत

चलो, घर चलें,
लौट चलें अब उस धरती पर;
जहाँ अभी तक बाट तक रही
ज्योतिहीन गीले नयनों से
(जिनमें हैं भविष्य के सपने
कल के ही बीते सपनों से),
आँचल में मातृत्व समेटे,
माँ की क्षीण, टूटती काया।
वृद्ध पिता भी थका पराजित
किन्तु प्रवासी पुत्र न आया।
साँसें भी बोझिल लगती हैं
उस बूढ़ी दुर्बल छाती पर।
चलो, घर चलें,
लौट चलें अब उस धरती पर।

चलो, घर चलें,
लौट चलें अब उस धरती पर;
जहाँ बहन की कातर आँखें
ताक रही हैं नीला अम्बर।
आँसू से मिट गई उसी की
सजी हुई अल्पना द्वार पर।
सूना रहा दूज का आसन,
चाँद सरीखा भाई न आया।
अपनी सीमाओं में बंदी,
एक प्रवासी लौट न पाया।
सूख गया रोचना हाँथ में,
बिखर गये चावल के दाने।
छोटी बहन उदास, रुवासी,
भैया आये नहीं मनाने।
अब तो कितनी धूल जम गई

राखी की रेशम डोरी पर।
चलो, घर चलें,
लौट चलें अब उस धरती पर।

चलो, घर चलें,
लौट चलें अब उस धरती पर।
कितना विषम, विवश है जीवन!
रोज़गार के कितने बन्धन!
केवल एक पत्र आया है,
छोटा सा संदेश आया है,
बहुत व्यस्त हैं, आ न सकेंगे।
शायद अगले साल मिलेंगे।
एक वर्ष की और प्रतीक्षा,
ममता की यह विकट परीक्षा।
धीरे धीरे दिये बुझ रहे
हैं आशाओं की देहरी पर।
चलो, घर चलें,
लौट चलें अब उस धरती पर।

चलो, घर चलें,
लौट चलें अब उस धरती पर।
अगला साल कहाँ आता है
आखिर सब कुछ खो जाता है
अन्तराल की गहराई में।
जीवन तो चलता रहता है
भीड़ भाड़ की तनहाई में।
नई नई महिफ़िलें लगेंगी,
नये दोस्त अहबाब मिलेंगे।
इस मिथ्या माया नगरी में
नये साज़ो-सामान सजेंगे।
लेकिन फिर वह बात न होगी,
जो अपने हैं, वह न रहेंगे।

घर का वह माहौल न होगा,
ये बीते क्षण मिल न सकेंगे।
वर्तमान तो जल जाता है
काल देवता की काठी पर।
चलो, घर चलें,
लौट चलें अब उस धरती पर।

चलो, घर चलें,
लौट चलें अब उस धरती पर।
जहाँ अभी भी प्यार मिलेगा,
रूठे तो मनुहार मिलेगा,
अपने सर की कसम मिलेगी,
नाज़ुक सा इसरार मिलेगा।
होली और दिवाली होगी,
राखी का त्योहार मिलेगा।
सावन की बौछार मिलेगी,
मधुरिम मेघ-मल्हार मिलेगा।
धुनक धुनक ढोलक की धुन पर
कजरी का उपहार मिलेगा।
एक सरल संसार मिलेगा,
एक ठोस आधार मिलेगा
एक अटल विश्वास जगेगा,
अपनी प्रामाणिक हस्ती पर।
चलो, घर चलें,
लौट चलें अब उस धरती पर।

चलो, घर चलें,
लौट चलें अब उस धरती पर।
पूरी होती नहीं प्रतीक्षा,
कभी प्रवासी लौट न पाये।
कितना रोती रही यशोदा,
गये द्वारका श्याम न आये।

दशरथ गए सिंधार चिता, पर
राम गए वनवास, न आये।
कितने रक्षाबन्धन बीते,
भैया गये विदेश, न आये।
अम्बर एक, एक है पृथ्वी,
फिर भी देश-देश दूरी पर।
चलो, घर चलें,
लौट चलें अब उस धरती पर।

चलो, घर चलें,
लौट चलें अब उस धरती पर।
जहाँ प्रतीक्षा करते करते
सूख गई आँसू की सरिता।
उद्धेलित, उत्पीड़ित मन के
आहत सपनों की आकुलता।
तकते तकते बाट, चिता पर।
राख हो गई माँ की ममता।
दूर गगन के पार गई वह
आँखों में ले सिर्फ विवशता।
एक फूल ही अर्पित कर दें
उस सूखी, जर्जर अस्थी पर।
चलो, घर चलें,
लौट चलें अब उस धरती पर।

चलो, घर चलें,
लौट चलें अब उस धरती पर।
जहाँ अभी वह राख मिलेगी,
जिसमें निहित एक रूनेहिल छवि,
स्मृतियों के कोमल स्वर में
मधुर मधुर लोरी गायेगी।
और उसी आँचल में छिप कर,
किसी प्रवासी मन की पीड़ा,

युगों युगों की यह व्याकुलता,
पिघल पिघल कर बह जायेगी।
एक अलौकिक शान्ति मिलेगी।
आँख मूँद कर सो जायेंगे,
सर रख कर माँ की मिट्टी पर।
चलो, घर चलें,
लौट चलें अब उस धरती पर।

- विनोद तिवारी



प्यार का नाता

जिन्दगी के मोड़ पर यह प्यार का नाता हमारा।
राह की वीरानियों को मिल गया आखिर सहारा।

ज्योत्सना सी स्निग्ध सुन्दर, तुम गगन की तारिका सी।
पुष्पिकाओं से सजी, मधुमास की अभिसारिका सी।

रूप की साकार छवि, माधुर्य की स्वच्छन्द धारा।
प्यार का नाता हमारा, प्यार का नाता हमारा।

मैं तुम्ही को खोजता हूँ, चाँद की परछाइयों में।
बाट तकता हूँ तुम्हारी, रात की तनहाइयों में।

आज मेरी कामनाओं ने तुम्हे कितना पुकारा।
प्यार का नाता हमारा, प्यार का नाता हमारा।

दूर हो तुम किन्तु फिर भी दीपिका हो ज्योति मेरी।
प्रेरणा हो शक्ति हो तुम, प्रीति की अनुभूति मेरी।

गुनगुना लो प्यार से, यह गीत मेरा है तुम्हारा।
प्यार का नाता हमारा, प्यार का नाता हमारा।

- विनोद तिवारी



यादगारों के साये

जब कभी तेरी याद आती है
चांदनी में नहा के आती है।
भीग जाते हैं आँख में सपने
शब में शबनम बहा के आती है।

मेरी तनहाई के तसव्वुर में
तेरी तसवीर उभर आती है।
तू नहीं है तो तेरी याद सही
ज़िन्दगी कुछ तो संवर जाती है।

जब बहारों का ज़िक्र आता है
मेरे माज़ी की दास्तानों में
तब तेरे फूल से तबस्सुम का
रंग भरता है आसमानों में।

तू कहीं दूर उफ़क से चल कर
मेरे खयालों में उतर आती है।
मेरे वीरान बियाबानों में
प्यार बन कर के बिखर जाती है।

तू किसी पंखरी के दामन पर
ओस की तरह झिलमिलाती है।
मेरी रातों की हसरतें बन कर
तू सितारों में टिमटिमाती है।

वक्ते रुख़सत की बेबसी ऐसी
आँख से आरजू अयाँ न हुई।
दिल से आई थी बात होठों तक
बेज़ुबानी मगर जुबां न हुई।

एक लमहे के दर्द को लेकर
कितनी सदियां उदास रहती हैं।
दूरियां जो कभी नहीं मिटतीं
मेरी मंज़िल के पास रहती हैं।

रात आई तो बेकली लेकर
सहर आई तो बेकरार आई।
चन्द उलझे हुये से अफ़साने
ज़िन्दगी और कुछ नहीं लाई।

चश्मे पुरनम बही, बही, न बही।
ज़िन्दगी है, रही, रही, न रही।
तुम तो कह दो जो तुमको कहना था
मेरा क्या है कही, कही, न कही।

- विनोद तिवारी



श्रीहत फूल पडे हैं

अंगारों के घने ढेर पर
यद्यपि सभी खड़े हैं
किन्तु दम्भ भ्रम स्वार्थ द्वेषवश
फिर भी हठी खड़े हैं

क्षेत्र विभाजित हैं प्रभाव के
बंटी धारणा-धारा
वादों के भीषण विवाद में
बंटा विश्व है सारा
शक्ति संतुलन रूप बदलते
घिरता है अंधियारा
किंकर्तव्यविमूढ़ देखता
विवश मनुज बेचारा

झाड़ कंटीलों की बगिया में
श्रीहत फूल पडे हैं
अंगारों के बने ढेर पर

वन के नियम चलें नगरी में
भ्रष्ट हो गये शासन
लघु-विशाल से आतंकित है
लुप्त हुआ अनुशासन
बली राष्ट्र मानव लेता है
सब बातें निर्बल से
यदि विरोध कोई भी करता
चढ़ जाता दल बल से

न्याय व्यवस्थ ब्याज हेतु
बलशाली राष्ट्र लडे हैं
अंगारों के बने ढेर पर

दीप टिमटिमाता आशा का
सन्धि वार्ता सुनकर
मतभेदों को सुलझाया है
प्रेमभाव से मिलकर
नियति मनुज की शान्ति प्रीति है
युद्ध विकृति दानव की
सुख से रहना, मिलकर बढ़ना
मूल प्रकृति मानव की

विश्वशान्ति संदेश हेतु फिर
खेत कपोत उड़े हैं
अंगारों के बने ढेर पर

- वीरेन्द्र शर्मा



गीत बनाने की जिद है

दीवारों से भी बतियाने की जिद है
हर अनुभव को गीत बनाने की जिद है

दिये बहुत से गलियारों में जलते हैं
मगर अनिश्चय के आँगन तो खलते हैं

कितना कुछ घट जाता मन के भीतर ही
अब सारा कुछ बाहर लाने की जिद है

जाने क्यों जो जी में आया नहीं किया
चुप्पा आसमान को हमने समझ लिया

देख चुके हम भाषा का वैभव सारा
बच्चों जैसा अब तुतलाने की जिद है

कौन बहलता है अब परी कथाओं से
सौ विचार आते हैं नयी दिशाओं से

खोया रहता एक परिन्दा सपनों का
उसको अपने पास बुलाने की जिद है

सरोकार क्या उनसे जो खुद से ऊबे
हमको तो अच्छे लगते हैं मंसूबे

लहरें अपना नाम-पता तक सब खो दें
ऐसा इक तूफान उठाने की जिद है

- यश मालवीय



